यज्ञदत्त

लेखक की अन्य रचनाएँ

१.	विचित्र त्याग	उपन्यास
२.	ललिता	,,
३.	दो पहलू	,,
४.	इन्सान	,,
५.	अंतिम चरण	,,
६.	निर्माण-पथ	,,
७.	महल और मकान	,,
८.	बदलती राहें	,,
९.	प्रबन्ध सागर	प्रबन्ध-रचना
१०.	आलोचना के सिद्धांत	आलोचना
११.	हिन्दी के उपन्यासकार	,,
१२.	संत कबीर	,,
१३.	हिन्दी का संक्षिप्त साहित्य	,,
१४.	हिन्दी साहित्य का सांकेतिक इतिहास	,,

लेखक के कुछ उपन्यास

इन्सान—यू० पी० सरकार द्वारा पुरस्कृत यह उपन्यास श्री यज्ञदत्त जी की वह अनूठी कृति है कि जिसमें भारत-विभाजन के वातावरण का रोमांचकारी तथा हृदयविदारक चित्रण बहुत ही सहानुभूति के साथ चित्रित किया है। मूल्य ४)

अंतिम चरण—इस उपन्यास में उपन्यासकार ने आज के राजनैतिक वातावरण तथा मखमल में चाकू छुपाकर चलने वाले सामाजिक चोरों की खूब पोल खोली है। मूल्य ७॥)

निर्माण-पथ—इस उपन्यास में मजदूर तथा मिल मालिकों की समस्या को लेकर देश-उन्नति में निर्माण के मार्ग की ओर लेखक ने संकेत किया है। मूल्य ४)

महल और मकान—इस उपन्यास में पूंजीवाद और साम्यवाद की भावना को लेकर एक सुन्दर कथानक तय्यार किया है और दोनों के मॉडल कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं। मूल्य ३)

बदलती राहें—इस उपन्यास में सामाजिक बन्धनों के प्रति विद्रोह है और साथ ही ज़मींदारी उन्मूलन का बहुत ही सजीव चित्रांकन मिलता है। मूल्य ३)

कुछ सम्मतियाँ

१. डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—"आप में उपन्यासकार की प्रतिभा है, कथानक के सुकुमार स्थलों को पहिचानने की शक्ति है और पात्रों में आदर्श की प्रतिष्ठा करने की योग्यता है।"

२. कन्हैयालाल मिश्र—"यज्ञदत्त—उसे मैं आज की दुनियाँ की उथल-पुथल को अपनी रचनाओं में साकार कर देने वाला सफल कलाकार

कहूँगा। कल्पना की कोमलता, सत्य की रंगीनियाँ और पात्रों को जीवन प्रदान करना ही मानो उसे आता है।"

३, ठाकुर श्री नाथसिंह—"श्री यज्ञदत्त जी की लेखनी का चमत्कार प्रशंसनीय है। समाज और इतिहास के खण्डहरों पर तो उपन्यास अपने दुर्ग बनाता ही रहा है और मु० प्रेमचन्द तथा वृन्दावन लाल वर्मा की लेखनियाँ इस दिशा में खूब चली हैं परन्तु भारत की सजीव राजनीति को पात्रों में भरकर रङ्ग-मञ्च पर ले आने का प्रथम सफल प्रयास हमें श्री यज्ञदत्त जी के उपन्यासों में ही देखने को मिला है।"

४. Leader (प्रयाग)—"the author has opened a new chapter in the history of Hindi Novels. His language in very sweet and characterisation marvelous."

५. Tribune—"Shri Yag Dutta, the well known hindi novalist, has most progressive out look on life. His novals are of Hiigh educational value. The author has singularly charished the tendency to use the medium of noval for the presentation of serious issues of life."

६. धर्मयुग (बम्बई)—"श्री यज्ञदत्त के उपन्यास हिन्दी में अपने ढङ्ग के अलग ही हैं। आपने हिन्दी उपन्यास-साहित्य को एक नवीन धारा प्रदान की है।"

७. हुंकार—(पटना) "यज्ञदत्त जी के उपन्यास बहुत सफल हैं और आशा है राजनीति के विद्यार्थियों के लिए यह बहुत उपादेय साबित होंगे।"

८. अशोक—(दिल्ली) "मु० प्रेमचन्द के पश्चात् समाज और राष्ट्र को अपने साहित्य में साकार प्रस्तुत कर देने वाले उपन्यासकारों में श्री यज्ञदत्त जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।"

मधु

यज्ञदत्त

प्रकाशक
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली

प्रकाशक
साहित्य प्रकाशन, दिल्ली।
प्राप्ति-स्थान
आत्माराम एण्ड सन्स
काश्मीरीगेट, दिल्ली।

मूल्य : तीन रुपया

मुद्रक
रामाकृष्णा प्रेस
कटरा नील, दिल्ली।

हिन्दी के उपन्यास-क्षेत्र में इन दिनों जिस प्रकार की कृतियाँ सामने आई हैं उनमें एक बात तो सभी में दृष्टिगोचर होती है कि कोई भी लेखक बिना मूल्य के—आदर्श से आगे नहीं बढ़ा है : उपन्यास चाहे इतिवृत्तात्मक हो अथवा आत्म-स्वीकृति और आत्मपीड़न के मार्मिक रोदन से रोचक और प्रखर। यही इस बात का प्रमाण है कि लेखक आज अपने जीवन और अपने ढंग से, दृष्टि से समाज के जीवन की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए व्याकुल है। व्याकुलता सब में है परन्तु उसकी और किसी की दमन की प्रवृत्ति है और किसी की उसको दूर करने के लिए एक माध्यम खोज निकालने की हौंस।

टी. एस. इलियट ने कहा है : 'प्रत्येक युग को वही साहित्य मिलता है कि जिसके वह योग्य होता है।' उन्होंने योग्यता के आवरण में सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियों से अनुप्राणित मनश्चेतना के स्तर के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है, यह अधिकार पूर्वक नहीं कहा जा सकता, तो भी यह सत्य ही माना जायगा कि युग की बुद्धि-वादी शक्ति जिस स्तर को स्वीकार कर लेगी उसी के अनुरूप रचना करेगी और इस दृष्टि से उसे कहने का अधिकार स्वतः प्राप्त हो जायगा कि 'जिस योग्य हो, उसी योग्य वस्तु दी जा रही है'। और अन्त में यह धारणा वहाँ जाकर समाप्त होतीहै, जहाँ पहुँच कर यह कहा जाता है : 'जनता की रुचि ही निम्न कोटि है। उसे अश्लील व जासूसी रचनाएँ पसन्द हैं, साहित्य किस चिड़िया का नाम है, यह उसे मालूम ही नहीं। इसलिए रचनाएँ उनके लिए लिखी जायँ जो समझदार हों, जिनमें साहित्य के प्रति सद्भावना मूलक परखबुद्धि हो और जो सही अर्थों में समाज के आगेवान बुद्धिवाद के प्रतिनिधि हैं।' उन प्रतिनिधियों का वातावरण, मनश्चेतना की 'तटस्थ' आलो-चना रचनाओं में झलकने लगती है। पात्र जीवित नहीं, मानसिक रह जाते हैं और साहित्य 'मानसिक भोजन' ही तो है !

'मानसिक भोजन' की धारणा को पुष्ट करने के लिए विदेशी साहित्य भी बड़ी सीमा तक जिम्मेदार है। विदेशी साहित्य और विदेशी राज्य के प्रभाव से देश में एक ऐसा वर्ग उभरा है, जो मध्यम वर्ग के नाम से पुकाराजाता है और जिस

की समस्याएँ उच्चवर्ग और निम्नवर्ग से अलग-थलग हैं : मुख्यतः उसकी समस्या आकुलता की है। प्रत्येक गति में आकुलता—अच्छे घर के लिए, अच्छे परिवार के लिए और मूल्यवान संस्कृति के लिए। इसी आकुलता को आगेवान बुद्धिवाद—स्पष्ट है कि वह इसी मध्यम-वर्ग की मान्यताओं के बीच पनपा स्वतंत्रताप्रिय और उन्मुक्त बुद्धिवाद होगा—अपनी रचनाओं में अपनी कामनाओं में स्पष्ट करता है जिनमें बहस होती है—कुछ तर्क भी होते हैं। बस तर्क से आगे उसकी दृष्टि नहीं जाती और यदि जाती भी है तो वह, शायद इसलिए कि वह उस तर्कप्रसंगित अन्त पर नहीं पहुँचता कि कहीं उसे कलाकार के पद से च्युत करके, आलोचकगण प्रचारक या उपदेशक के सिंहासन पर चँवर डुलानेवाला न कहने लगें।

आगेवान बुद्धिवाद में भी मुख्यतः दो विचारधाराएँ रहती हैं—एक तो राह दिखने की चेष्टा करने की और एक बीच भँवर में छोड़ देने की। राह दिखाने की चेष्टा करने वाले बुद्धिवादी भी स्वप्निल तो होते ही हैं, इसलिए उनके स्तुत्य प्रयासों को धरती अंगीकार करना चाहकर भी नहीं कर पाती। और बीच भँवर में भटकने तथा डूबने को छोड़ देने वाले से तो धरती नाता ही कैसे जोड़े ? उससे तो अच्छी तिलस्मी व अइयारी की रचनाएँ ही हैं, जो बुद्धि के चैतन्य को कुछ देर के लिए झकझोरती तो हैं।

साहित्य का आदर्श क्या होता है—इस प्रश्न को भलीभांति पछोरा गया है। मनोरञ्जन, कला और उद्देश्य : तीन मुख्य धुरी इसी से मानी गई हैं। तीनों दृष्टि से हिन्दी में रचनाएँ

आरही हैं, आई हैं। अलग-अलग से दिखने पर भी वस्तुतः ये बिन्दु, एक दूसरे से इतने सम्बन्धित हैं कि यह कहना तनिक कठिन है कि कौन कहाँ समाप्त होता है, पर तो भी कुछ रचनाकार अखण्ड रूप से इन तीनों का प्रतिनिधित्व हिन्दी में करते हैं ; और उनमें से कुछ समर्थ हैं, इसलिए प्रभावशील भी हैं।

कुछ रचनाकार इन तीनों बिन्दुओं का संगम अपनी रचनाओं में सृजित करते हैं और उस परम्परा को आगे बढ़ाते हैं जो प्रेमचंद ने डाली थी। प्रेमचंद साहित्यको और साहित्यकार को ऊँचा दर्जा देते थे। साहित्य के विषय में उनकी मान्यता थी : "साहित्य उस उद्योग का नाम है जो आदमी ने आपसके भेद मिटाने और उस मौलिक एकता को व्यक्त करने के लिए किया है, जो इस जाहरी भेद की तह में, पृथ्वी के उदर में व्याकुल ज्वाला की भाँति छिपा हुआ है। जब हम मिथ्या विचारों और भावनाओं में पड़ कर असलियत से दूर जा पड़ते हैं, तो साहित्य हमें उस सोते तक पहुँचाता है जहाँ असलियत (रियलिटी) अपने सच्चे रूप में प्रवाहित हो रही है।"

और साहित्यकार का दर्जा तो उनकी नजरों में बहुत ऊंचा था—"साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है—उसका दरजा इतना नीचा न गिराइए। वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली इकाई भी नहीं, बल्कि उनके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है।"

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक (यज्ञदत्त जी) ने प्रेमचंद की

इन दोनों सीखों को, शायद महापुरुष के वचनों की तरह सीखा है, परखा है, गुना है और फिर आत्मसात् कर उनको अपने माध्यम में निखारने की ओर रुचि—सशक्त व सजग रुचि दिखलाई है। इनके पहले के उपन्यासों में भी एक 'सत्य की खोज' हमें मिलती है—समाज की विशिष्ट समस्याओं को लेकर उनपर सजीव टिप्पणियाँ दे क्रियात्मकता की ओर संकेत करना, बल्कि कभी-कभी तो पूरी-पूरी योजना सँजो देना और उसको व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत करना वास्तव में सराहनीय कार्य है और युग की परिस्थितियों की आधिकारिक विवेचना है।

इस नए उपन्यास 'मधु' में श्री यज्ञदत्त जी ने समाज के एक और महत्त्वपूर्ण पहलू को, वेश्यावृत्ति और उसके व्यवसायीकरण तथा मानवीय दुर्गुणों एवं गुणों को एक नए अंदाज से उभारा है। लड़कियों को बेचने के साथ ही पुजारी बने रहना और पुजारी-पुत्र होकर वेश्या से प्रेम करना, फिर उसे उबार लेना और अपनी दृढ़ता तथा कुशल बुद्धि से वेश्या बनाने वाले दलालों को परास्त कर नए संकल्प से नया पथ चुनना नए समाज के प्रचारक बनकर गली-गली फिरने की घोषणा करना—कैसी चोट है एक ही वर्ग के दो पात्रों के व्यंग की !

'मधु' में सरसता है भाषा की और भाव की अनुभवगम्यता। कवि-हृदय से लिखे होने पर भी—उपन्यास में कई सुन्दर गीत हैं—उपन्यास की सजगता और पैनेपन की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। उपन्यास का आरम्भ जिस काव्यमय वातावरण में हुआ है, वह पाठक को अपनी ओर खींचने की पूरी-पूरी सामर्थ्य रखता है और प्रवेश के अवसर पर ही पात्रों के चरित्रों को जिस प्रकार स्थापित किया गया है, उससे प्रतीत

होता है कि लेखक कुछ कहेगा—कुछ संदेश है इस कथा के पीछे—बहुधा किसी रचना के प्रारम्भ में इस प्रकार का कुतूहल कम लेखक हिंदी में दे पाते हैं। लगता है कि लेखक का नाटकीय शैली पर अच्छा अधिकार है, क्योंकि कुशल नाटककार ही प्रथम दृश्य में अपने पात्रों की सजीवता और उनके प्राणों की महत्ता को प्रतिष्ठापित कर पाता है।

मधु स्वयँ राजन से अपना परिचय 'छलना', 'धोखा' और 'पाप' के रूप में देकर पाठक की सहानुभूति प्राप्त कर लेती है, परन्तु यह स्पष्ट नहीं होपाता पाठक पर कि वह वेश्या है—इसी कारण कुतूहल बढ़ता है। क्यों वह ऐसे परिचय दे रही है और राजन आखिर क्यों उसे अपने 'जीवन की ज्योति' कहता है। फिर तनिक आगे उनके प्रथम मिलन का वर्णन और उस समय के संवाद बड़े ही भले बन पड़े हैं।

राजन नायक है, पुजारी है, उपदेश भी देता है और सुधार भी करता है। मधु की ओर उसका आकर्षण उसकी विलक्षणता के कारण होता है। अचानक मिलन में इस प्रकार की प्रवृत्ति अस्वाभाविक नहीं। मधु तो अपने उस्ताद की ज्यादतियों से तंग होकर भागी थी, पर राजन के कर्मक्षेत्र को छोड़कर भागने के प्रति अच्छे विचार न जान कर वह फिर लौटी कर्मक्षेत्र में और अपने को ऊँचा उठाकर, स्वयँ से जीत कर और पास के समाज को भी जीत गई। जो पहिले उसे अंगुलियों पर नचा लेते थे, वे स्वयँ उसके इंगित के दास बन गये—इतनी बड़ी जीत प्रेम के विश्वास और दृढ़ता के कारण ही संभव बनी।

राजन के व्यक्तित्व में लेखक ने इन्सानी नरमाई और इस्पाती दोनों वृत्तियों का आदर्श उपस्थित किया है। दुखी के प्रति स्वाभाविक आर्द्रता और सहायता करना उसका जैसे धर्म बन गया है। तभी तो वह यह कहने का साहस कर सकता है, पुजारी होते हुए भी,—"मधु ! मैं तुम्हें अपना चुका हूं। तुम्हारे हृदय में कोई रहस्य है जिसे छुपाने के लिए तुम पगली बन रही हो। मैं मानववादी व्यक्ति हूँ। संसार का कोई भी प्रतिबन्ध मेरे मार्ग को अवरुद्ध नहीं कर सकता। जिसे मैं ठीक समझता हूँ उसके मार्ग में यदि स्वयँ भगवान् भी आकर खड़े हो जायँ तो मैं उन्हें भी पत्थर का टुकड़ा समझकर ठुकरा दूँगा।" (पृष्ठ १०)

और मधु अपने को 'साधना का साधन' बनने देने में तो सन्तुष्ट है पर कातर है प्रकट करते समय क्योंकि उसके अंतरतम में समाज के कोप की आशंका है—वेश्या प्रेम करे—पुजारी के बेटे से प्रेम ! और राजन के समझाने पर भी कि 'आज के समाज का ढाँचा .....निर्जीव हो चुका है' उसका डर कम नहीं होता। परन्तु उसकी बल और परखने की बात से मधु को आशा बंधती है। और मधु में आयाचित चपलता आ जाती है। साथ ही शंका दामन पकड़े रहती है।

विश्वास और शक्ति के नए संचय से मधु की जीत को बड़ी स्वाभाविकता से दिखाया है। और राजन के पात्र में जो अदम्यशक्ति, मानव-प्रेम और समाज के गले सड़े अंगों को निर्मूल करके नए स्वस्थ समाज के निर्माण करने की क्रियात्मकता है, वह हमें प्रेरणा देती है। राजन स्वयँ कहता है—

विद्रोह करूँ विद्रोह करूँ
मानव की जड़ता को तोड़ूँ ।
मानव जिसमें पशु सम बिकता
मैं ऐसा जड़ समाज छोड़ूँ ।

बालिकाओं की बेचवानी, उनसे शादी का ढोंग करके शहर में लाकर कोठे पर बिठला देने की चालाकियाँ और पुलिस, राजे, जमींदार, पुजारी सभी की साँठ-गाँठ से चलने वाले इस व्यवसाय को बड़ी गहराई से समझकर लेखक ने उसका अच्छा बखिया उधेड़ा है। यहाँ हमें लेखक की बौद्धिक प्रखरता के दर्शन होते हैं। वेश्याओं के जीवन, उस्तादों के जोड़ तोड़, वहाँ के वातावरण की सजीवता को भी लेखक ने निखारा है। हृदय परिवर्तन और मनोवैज्ञानिक उथल-पुथल तथा वस्तुगत परिस्थितियों से उत्पन्न चेतना के दाँव पेंच, उस्ताद की लड़की खरीदने में करारी हार, फिर उनकी मधु से क्षमा-याचना और अन्त में राजन के प्रति पहिले की द्वेष-भावना का शमन और आदर की भावना का जागरण— यह सभी कुछ बड़ी कुशलता से निबाहे गए हैं।

उपन्यास में शैलीगत विशेषता के साथ ही साथ आदर्शगत नई स्थापना भी है : काव्यमय वातावरण और नए समाज की शंखध्वनि। जहाँ तक शैली का सम्बन्ध है श्री यज्ञदत्त जी ने हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में यह प्रथम कदम उठाया है कि उपन्यास में भी नाटक की ही भांति रसकी धारा प्रवाहित हो उठे। उपन्यास के मार्मिक स्थलों पर छाँट छाँटकर आपने बहुत ही सुन्दर कविताएँ प्रस्तुत की हैं। साथ ही 'प्रसाद' की कामामायनी तथा

हरिकृष्ण प्रेमी की 'आँखें' रचनाओं में से जो पंक्तियाँ दी हैं वह हिन्दी में अपने ढंग का अनूठा ही प्रयोग है। इस नवीन प्रयास के लिए हमें पूर्ण आशा है कि हिंदी-जगत आपकी सराहना किये बिना नहीं रहेगा।

निश्चय ही 'मधु' हिन्दी उपन्यास-क्षेत्र में एक नया गौरवपूर्ण पग है।

डा० 'राकेश' गुप्त,

काशी : ४-८-५३ एम. ए. डी. लिट

—१—

गंगा के किनारे, हिमालय की पर्वत-माला शृंखला पर शृंखला बाँधे दूर, बहुत दूर, न जाने कहाँ तक चली गई थी। उसी से टूटकर, यह पाषाण-शिला यहाँ आ गिरी थी। कितनी स्वच्छ, कितनी साफ, शायद सरिता के थपेड़ों ने इसे ऐसा बना दिया था। इसी पर बैठी थी वह बालिका। शायद वह भी संसार की दूर तक फैली हुई शृंखलाओं से टूटकर यहाँ इस पत्थर पर आगिरी थी; कितनी साफ, कितनी स्वच्छ, कितना यौवन और उसपर कैसा उभार, कैसा निखार; अवर्णनीय थी यह सौंदर्य की अलौकिक छटा।

दूर कोई निर्जन में गारहा था :—

धवल गिरि से टकराता नीर,
कसक-सी उठती बन-बन पीर।

दीन दुविधा-सी, प्रस्तर-मौन,
हृदय की व्याकुल पीड़ा मौन,
नियति-गति-चक्र-विलीना मौन,
अरी! इस हँसतें वन में कौन

अश्रु बरसाती बनी अधीर?
धवल गिरि से टकराता नीर,
कसक-सी उठती बन-बन पीर।

सरित-उर करता कौन दुराव?
छुपाता उर में किसके घाव?
रुलादेते हा! कोमल चाव,
डुबाती क्यों नयनों में नाव?

अरी ! आनेदे इसको तीर।
धवल गिरि से टकराता नीर
कसक-सी उठती वन-वन पीर।

गायन का स्वर बालिका के कानों में पड़ा तो वह हिरनी के समान चौकन्नी होकर इधर-उधर निहारने लगी। खड़ी होगई, और जब-तक कि वह भागने का प्रयास करती, गायक उसके सामने आगया। गायक ने बालिका के बिलकुल सामने पहुँच, अपने दोनों हाथ बाँध लिए, और विनम्र स्वर में कहा, "रूठ गईं देवी ! परन्तु मेरा अपराध तो कुछ कहा होता। मेरे इस सूने मन्दिर में आकर एक दिन तुमने ज्योति जगाई थी। वह जगमगा उठा। उस ज्योति ने आलोकित कर दिया मेरे हृदय-मंदिर का कोना-कोना। आज तुम उसे फिर अन्धकार की गहन-गुहा में धकेल कर भागजाना चाहती हो। जाओ ! यह राजन इस समय तुम्हें रोकने नहीं आया। यह आया है केवल अपना अपराध पूछने, केवल अपना अपराध।" राजन का स्वर धीरे-धीरे भारी हो रहा था और वह अधिक कुछ न कहसका।

बालिका मौन थी, शब्दविहीन, वाणीविहीन। उसने नेत्र उठाकर राजन के मुखपर भी नहीं देखा। केवल ढुलकते हुए अपने आँसुओं की बूँदें पोंछकर धीमे स्वर में बोली, "तुम बहुत भोले हो राजन, और मैं छलना हूँ ! मैंने तुमको धोखा दिया है, तुमसे झूठ बोला है। बहुत बड़ा पाप किया है मैंने, राजन ! मुझे गंगा-माता की गोद में जाकर सर्वदा के लिए सोजानेदो। तुम्हारे योग्य मैं नहीं बनसकती। तुम्हें तुच्छ बनाकर अपनी कामनाओं की पूर्ति मैं नहीं करूँगी।"

राजन कुछ न समझ सका। मधु छलना है, मधु ने राजन को धोखा दिया है, राजन से झूठ बोला है, पाप किया है। राजन यह सब कुछ नहीं समझ पाया। राजन के विशाल हृदय में इन बातों के लिए कोई स्थान ही नहीं था। उसने आगे बढ़कर बालिका के दोनों हाथ अपने हाथों में लेते हुए कहा, "मधु ! इन स्वप्न की बातों को जानेदो। तुम

क्या हो ? यह तुम नहीं, मैं जानता हूँ। तुम मेरे जीवन की ज्योति हो मधु ! और तुम्हारे बिना मेरा जीवन अन्धकारपूर्ण हो जायगा। मैं तुम पर जोर नहीं दूँगा, परन्तु प्रार्थना करने का तो मुझे अधिकार है। तुम मेरे जीवन को अन्धकारपूर्ण बनाने की चेष्टा न करो। मेरी कल्पना की तुम देवी हो और तुम्हारी मधुर-मुस्कान में मेरे संगीत का स्वर थिरकने लगता है। जबसे तुम यहाँ आईहो मैं नित्य मंदिर में भजन-पूजन के लिए जाता हूँ, और अब तो वहाँ आनेवालों की संख्या भी बहुत बढ़-गई है। यदि तुम चली जाओगी तो जिस मन्दिर को तुमने प्राण-दान दिया था उसकी मृत्यु हो जायगी।" इतना कहकर राजन ने मधु की ओर आशाभरी दृष्टि से देखा। मधु अभी भी रोरही थी। उसका हृदय धड़क रहा था और संकोचवश उसके नेत्र ऊपरको नहीं उठरहे थे।

मधु राजन के साथ फिर मंदिर में लौट आई, परन्तु उसके हृदय पर एक भारीपन था। उस भारीपन को लेकर वह जीवन में आगे बढ़ना नहीं चाहती। वह अपने सम्पूर्ण रहस्य राजन पर खोलकर ही जीवन में उसके साथ बढ़सकती थी, छुपाकर नहीं। वह उसकी दृष्टि में पाप था। उसका आजतक का जीवन एक धोखा था, एक समस्या थी। क्या था यह सब वह कुछ नहीं जानती। परन्तु हाँ, इतना वह अवश्य जानती थी कि वह स्पष्ट नहीं था। जोकुछ वह कहती थी वह वह नहीं था, जो कुछ वह सोचती थी वह वह नहीं था, जोकुछ वह विचार करती थी वह वह नहीं था। जो ऊपर से स्वर्ण-जैसा दमकता प्रतीत होता था वह अन्दर से स्याह था, जो ऊपर से प्रेम प्रतीत होता था वह अन्दर से जलन थी, आह थी, एक पीड़ित हृदय की वेदना की जलतीहुई कसौटी थी। उस-पर वह राजन को नहीं कससकती थी। वह कल्पना का सलौना सुमन उस पाषाण की देवी पर नहीं चढ़ाया जासकता। उसे प्राप्त करने के लिए यह मूर्ति अयोग्य थी।

जंगल के एकान्त कोने में था राजन का यह मन्दिर। एक कुटिया

थी साधारण-सी गंगा के किनारे । कोई विशाल भवन नहीं था। राजन गाता बहुत मधुर था और इसीलिए जब वह संध्या को यहाँ बैठकर भजन करता था तो इधर-उधर के प्रेमी-जन आकर एकत्रित होजाते थे । कुछ भक्त-लोग राजन के खाने-पीने का भी प्रबन्ध कर देते थे। परन्तु राजन कभी किसीसे कुछ कहता नहीं था इसके विषय में, कुछ माँगता नहीं था । गाता था और रहता था, बस यही उसे आता था।

एक दिन इसीप्रकार भजन के पश्चात् सब लोग तो चले गये परन्तु मधु वहाँ बैठी रह गई । राजन ने उससे पूछा, "तुम कौन हो जी ?"

"मधु", उस बालिका ने सरल मुस्कान के साथ कहा।

राजन—"परन्तु मधु तो मक्खियों के छत्ते में रहता है।"

मधु—"तुम ठीक कहते हो पुजारी! परन्तु अभी-अभी क्या तुमने नहीं देखा था कि यहाँ पर कितनी मक्खियाँ मेरे चारों ओर बैठी थीं। मक्खियाँ उड़ गईं और मधु रह गया।"

राजन की कुछ समझ में न आया । समझा, शायद कोई यात्री इधर-उधर गया होगा, उसी के साथ यह आई है; वह आजायगा और यह उसके साथ चली जायँगी । परन्तु ऐसा नहीं हुआ। न कोई आया, न कोई गया । सन्ध्या के सुनहले प्रकाश पर रात्रि के धागे बँधने लगे, कालिमा छानेलगी, शीतल बयार बहने लगी, बदन में कुछ कँप-कपी आनेलगी, परन्तु मधु ज्यों-की-त्यों बैठीहुई राजन के गाये हुए गीत को धीरे-धीरे गुनगुनारही थी।

"तुमको गाना भी आता है ?" राजन ने पास आकर मधु की बिखरीहुई अलकों के अन्दर से अपने नेत्रों की ज्योति को गड़ाकर उसके मुख तक ले जातेहुए पूछा ।

"कोई विशेष नहीं, यूँ ही कभी-कभी कुछ गुनगुना लेती हूँ।"

"और नाचना ?" राजन ने पूछा।

"सो भी कोई विशेष नहीं, कभी-कभी जी बहलाने के लिए पैरों में

घुँघरू बाँधलेती हूँ।" उसी सरल चापल्य में नेत्र ऊपर उठाकर राजन के जिज्ञासित नेत्रों में अपने नेत्र डालते हुए उत्तर दिया।

"तो यों कहो कि तुम सब कलाओं में निपुण हो। परन्तु देवी! क्या पूछ सकता हूँ कि तुम इस निर्जन वन में कैसे आनिकलीं? तुमको भय नहीं लगा यहाँ आने में?"

मधु—"भय तो लगरहा है महाशय! परन्तु उस भय से मुक्ति-दान देनेवाला भीतो कोई हो। मेरे लिए तो आज समस्त संसार ही निर्जन वन है।"

राजन—"क्या मैं तुम्हारी कुछ सेवा कर सकता हूँ। मेरी कुटिया तुम्हारे स्वागत के लिए खुली पड़ी है बालिके! तुम इसमें विश्राम करो।"

और उस रात को मधु वहीं रही। उसे बहुत रात तक नींद नहीं आई। रात में इधर-उधर जंगली जानवरों के चीत्कार सुनाई देते थे तो वह कॉंप-कॉंप कर सिमटजाती थी, बैठी हो जाती थी।

"क्यों? क्या बात है? भय मालूम देता है। यहाँ तो नित्य इसी प्रकार के चीत्कार सुनाई देते हैं मधु! और इसी चीत्कार के बीच पलकर मैं इतना बड़ा हुआ हूँ। यहाँ अकेला रहता हूँ।" राजन ने चटाई पर बैठते हुए कहा।

मधु—"क्यों? अकेले तुम क्यों रहते हो? क्या तुम्हारा कोई और सगा-सम्बन्धी नहीं है?"

राजन—"नहीं मधु! कोई अपना कहने के लिए नहीं। और इतना कहकर राजन ने एक लम्बी साँस ली। "मैंवह प्राणी हूँ इस संसार में कि जिसे कभी किसी ने प्यार नहीं किया, दुलार नहीं किया। एक जंगली पौधे की भांति आपही इधर-उधर से खूराक पाकर इतना बड़ा होगया हूँ। इधर-उधर मेरे प्रेमी न सही, परन्तु मेरे संगीत के प्रेमी कुछ अवश्य बनगये हैं। आज सोचरहा हूँ कि भगवान् ने मुझे संगीत दिया तो तुमभी इधर खिंच आईं। शायद इस अंधकारपूर्ण जीवन

में तुमही कुछ प्रकाश का कारण बनसको।"

मधु यह सुन खिलखिलाकर हँसपड़ी और फिर अचानक खटिया से नीचे उतरतेहुए राजन का हाथ पकड़, झँझोड़कर बोली, "जिसे तुम प्रकाश समझने की भूल कररहे हो राजन! वह तो विश्व के अन्धकार को अपने में समेटकर लाई है। मेरा रूप देखकर कहीं फिसल न जाना। मैं तो नागिन हूँ जिसका काम ही भोले-भाले व्यक्तियों को डसना है। क्या तय्यार हो डसे जाने के लिए?"

राजन—"परन्तु यहाँ इस नागिन के लिए क्या रखा है मधु! यहाँ तो मधु के लिए राजन हो सकता है। मेरे इसी मन्दिर के पास एक बम्बी है और मधु उसमें एक बड़ी प्यारी नागिन रहती है। मैं उसे प्यार करता हूँ और वह भी कभी-कभी मेरा संगीत सुनने के लिए आती है। कल प्रातःकाल में उससे तुम्हारी भेंट कराऊँगा।"

मधु जीवन में प्रथम बार लजा गई, निरुत्तर हो गई, एक शब्द भी मुख से न बोल सकी। उसी अन्धकार में मधु ने अपने कोट की जेब से दियासलाई निकाली और जलाकर देखा कि राजन एक कम्बल में लिपटा-हुआ मौन चटाईपर बैठा था। राजन ने धीमे स्वर में मुस्कराकर कहा, "मैंने कहा था न मधु! कि तुम इस सूनी और बियाबान कुटिया में प्रकाश करने आईहो। सच समझो आज जीवन में प्रथमबार इस कुटिया ने प्रकाश का दर्शन किया है।"

दियासलाई की सींक बुझगई तो राजन ने पूछा, "परन्तु मधु! तुम्हारे पास दियासलाई कहाँ से आई?"

मधु—"क्यों! मैं सिग्रेट जो पीती हूँ। उसे जलाने के लिए मुझे दियासलाई साथमें रखनी होती है।"

राजन—"तुम सिग्रेट भी पीती हो? परन्तु तुमने संध्या से अभी तक पीतो एकबार भी नहीं।"

मधु—"नहीं पी, केवल इसलिए कि तुम शायद इसे पसन्द न करो।"

राजन चुप हो गया। सोचा, कैसी विचित्र लड़की है। मुझे बुरा लगने के भय से सिग्रेट पीतो नहीं, परन्तु मुझसे कहडालने में भी इसे कोई संकोच नहीं हुआ।

मधु—"तुम चुप होगये राजन! मुझे भय लग रहा है। तुम कोई संगीत सुनाओ न! कोई ऐसा मधुर गीत गाओ कि जिसमें मैं अपने को भुला सकूँ। सच कहरही हूँ राजन! इस समय बड़ी पीड़ा हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो कोई तूफान उठा चला आरहा है और वह हम दोनों को न जाने कहाँ बहाकर लेजायगा। परन्तु तुम मुझे छोड़ना नहीं राजन! मैं कुछ भी सही चाहे; परन्तु विश्वासघात करना मैंने जीवन में नहीं सीखा, हाँ सहन अवश्य किया है।" मधु का शरीर इस समय थर-थर काँप रहा था। वह पगली की तरह आकर राजन से लिपट गई।

राजन—"तुम इस समय सोने का प्रयत्न करो मधु! अभी बहुत रात पड़ी है। कब तक जागती रहोगी? तुम सोओ और मैं गाता हूँ।" मधु को खटिया पर लिटाते कुछ राजन ने कहा—

कौन तुम छवि-सी अकेली
आगई इस शून्य वन में?

रूप की अपनी सुनहली
मद-भरी मुस्कान लेकर,
मधु-भरे मीठे अधर पर
मुग्ध यौवन-गान लेकर,

मधुरतम संगीत-सी, पर
बनरहीं तूफान मन में।
कौन तुम छवि-सी अकेली
आगई इस शून्य वन में?

चलरहा सूना सफ़र था,
एक था मैं, बहरहा था,
जिंदगी के लघु-प्रबल
सब में थपेड़े सह रहा था।

कौन तुम बन शक्ति आईं
रूप-विद्युत मन-गगन में?
कौन तुम छवि-सी अकेली
आगईं इस शून्य वन में?

स्वप्न-सी छवि की मधुरिमा
किस नये जग में पुजारिन
शून्य का मन्दिर सजाने
आगई हो आज के दिन?

भार-सा कुछ हटरहा है,
बस रहा कुछ प्यार मन में।
कौन तुम छवि-सी अकेली
आगईं इस शून्य वन में?

राजन ने गाना गाया और मधु सोगई, प्रगाढ़ निद्रा में सोगई। सवेरे उठी तो राजन कुटिया के बाहर घूमरहा था। उसके हाथ में दाँतन थी और धोती का फेंटा उसके कन्धे पर पड़ा था। लम्बे घुँघराले बाल कमर पर बल खारहे थे। उन्नत भाल, गौर वर्ण, लम्बी नासिका, चौड़ा वक्षस्थल, लम्बी भुजाएँ, एक बाँका जवान था।

"उठोगी नहीं मधु!" खटिया के पास आकर राजन ने कहा। पक्षि-गण चहचहा रहे हैं। प्रभु का राग अलाप रहे हैं। प्राची से सूर्य-देवता उदय होना चाहते हैं। उनके हलके प्रकाश की लपेट में आकर वृक्षों की परछाँही देखो कितनी लम्बी होती चलीगई हैं! गंगा के निर्मल जल की किलोल करती हुई लहरियों में यह प्रकाश मस्त यौवन के उभार का

संदेश देरहा है मधु ! आँखें खोलो। तुम कल थक बहुत गई थीं शायद।"

मधु—"तुमने सच कहा राजन ! मेरा अंग-अंग टूट रहा था, दुःख रहा था। रात को यदि नींद न आती तो निश्चय ही आज तुम मुझे ज्वर में पड़ीहुई पाते। चलिए आपकी आफत टल गई। वरना खामखा बैठे बिठाये की मुसीबत तुम्हारे गले में आ फँसी थी।"

राजन—"ऐसा न कहो मधु ! तुम मेरी अतिथि हो। तुम्हारी सेवा करना मेरा धर्म है। जबतक भी तुम यहाँ रहना चाहो, यह कुटिया और इसका सेवक तुम्हारी सेवा करने में गर्वअनुभव करेंगे।" राजन उसी प्रकार खटिया के पास खड़ा दातन करताहुआ कहरहा था।

मधु ने अपनी दोनों हथेलियों से पलकें मलकर अपने बड़े-बड़े नेत्रों को कुटिया से बाहर पसारते हुए कहा—"अरे ! सचमुच ही यहतो दिन निकल आया।" और एकदम फुर्ती से कूदकर खटिया छोड़ दी। फिर दुपट्टा यों ही गले में डालकर कुटिया से बाहर निकलते हुए चारोंओर देखकर बोली—"राजन ! बड़ा मनोहर है यहाँ का दृश्य तो। तुम सच-मुच ही बड़े भाग्यशाली हो, जो इस प्रकृति की गोद में रहकर स्वर्गीय सुखकी प्राप्ति कररहे हो। हमलोग तो शहरों के कीड़े हैं, जिन्हें खोजनेपर भी कभी यह स्वच्छ वायु-मण्डल नसीब नहीं होता।" और इतना कहकर मधु इठलाती हुई गंगा की तरफ निकल गई। राजन पीछे-पीछे था। ज्यों ही मधु ने आगे पैर बढ़ाया तो किनारा फिसलकर गंगा में गिरने लगा; परन्तु राजन ने लपककर मधु को अंक में भरते हुए पीछे उठालिया। मधु सहम गई, और उसने तुरन्त ही गंगा-किनारे का वह टुकड़ा, जिसपर वह खड़ी थी, गंगा में धम्म से गिरते देखा।

राजन सामने खड़ा मुस्करा रहा था। फिर धीरे से बोला—"यह बहती हुई सरिता का किनारा है मधु ! इसमें पता नहीं कब तरेड़ आ जाय, और किनारा-का-किनारा ही साफ हो जाय। संभल कर चलना

होता है तनिक। यहाँ शहर की ठंडी सड़कें नहीं हैं कि जिनपर आँखें मींचकर भी चला जासके।"

मधु—"आपने सच कहा राजन ! यह बहती हुई सरिता का किनारा है। इसमें कहाँ और कब तरंग आजाय इसका कुछ पता नहीं। अभी-अभी आप मुझे न संभाललेते तो मेरी जीवन-लीला ही समाप्त होचुकी थी। परन्तु मैंने देखा है कि जब मृत्यु नहीं होती तो कुछ-न-कुछ सहारा मिल ही जाता है।" एक आह भरकर मधु ने कहा।

राजन—"तुम दार्शनिक भी मालूम देती हो मधु ! मैं समझ नहीं पाता हूँ तुमको कभी-कभी। कुछ मोटी बुद्धि का आदमी हूँ।"

मधु को कई दिन हो गये राजन के पास रहते। मधु रोज जाने की बात चलाती थी और राजन किसी प्रकार उसे टालदेता था। मधु को चुप हो जाना पड़ता, परन्तु इस बीच में कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि दोनों एक दूसरे के निकट आने का प्रयास करने पर भी उसमें सफल नहीं हो पा रहे थे। राजन मधु को अपनी ओर खींचता तो मधु खिंच आती थी, परन्तु फिर एकही झटके में मानो वह राजन के बनाये हुए सब बन्धनों को छिन्न-भिन्न करके साफ निकल भागती थी। सौंदर्य के इस आकर्षक रूप में मानो मधु कुछ योग की क्रियाएँ सीखने का प्रयास कर रही थी।

राजन ने अनुभव किया कि मधु भयभीत है अपनी आत्मा में, आज तो वह सब स्पष्ट ही हो गया। राजन के संगीत-स्वर ने मधु के हृदय की पीड़ा को खींचकर नेत्रों में ला दिया। मधु को खटिया पर बिठलाते हुए राजन उसके पास बैठ गया और उसे प्यार से अंक में भर कर धीरे से बोला, "मधु ! मैं तुम्हें अपनाचुका हूँ। तुम्हारे हृदय में कोई रहस्य है जिसे छुपाने के लिए तुम पगली बनरही हो। मैं मानववादी व्यक्ति हूँ। संसार का कोई भी प्रतिबन्ध मेरे मार्ग को अवरुद्ध नहीं कर सकता। जिसे मैं ठीक समझता हूँ उसके मार्ग में यदि स्वयं भगवान् भी आकर खड़े हो जायँ तो मैं उन्हें भी पत्थर का टुकड़ा समझ कर ठुकरा दूँगा।"

मधु ने राजन के मुखपर हाथ रखतेहुए अपने डबडबाये नेत्र उसके नेत्रों पर बिछा कर धीरे से कहा—"ऐसा न कहो राजन ! मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ, मैं मानवता से गिर चुकी हूँ. मुझे भय है कि कहीं तुम मुझे अपनाने का प्रयास करने में स्वयं को भी गड्ढे में न गिरा दो ।"

"यह मैं नहीं मानसकता" राजन ने दृढतापूर्वक कहा ।

मधु एक शब्द भी न बोल सकी । वह मौन थी, परन्तु विचारों के तूफान का बवंडर उसके हृदय और मस्तिष्क को झकझोरे डालरहा था । एक आँधी-सी उठरही थी उसके हृदय में । वह उसीप्रकार भूमि पर बैठगई । बैठगया राजन भी वहीं मधु के पास और उसने मधु को आश्रय देकर धीरे-से अपने अंक में लिटा लिया । फिर उसके उलझे बालों की घुँघराली लटों में अनायास ही अपनी उँगलियाँ डालकर धीमे स्वर में बोला, "मधु ! तुम्हारे हृदय को ठेस लगी है । राजन तुम्हारी इस ठेस पर मरहम लगायगा, तुम्हारे हृदय की जलन को शीतलता प्रदान करेगा, तुम्हारी उलझनों को सुलझाने का प्रयत्न करेगा, परन्तु तुम कुछ कहो भी तो ! अन्दर-ही-अन्दर घुल-घुल कर इस प्रकार जीवन के मूल स्रोत, आनन्द, को सुखाडालना भला कैसी नादानी है ! तुम्हारे जीवन में मैंने जीवन के वास्तविक उल्लास की प्रेरणा का दर्शन किया है ।"

मधु—"वह सब तो नाटकीय है राजन ! हृदय में पीड़ा का अथाह सागर लहराने परभी होठों से मुस्कराना मैंने सीखा है । यही तो मैंने तुम्हें धोखा दिया है । तुम्हारा जीवन जैसा बाहर से है वैसाही अन्दर भी है, परन्तु मेरा ऐसा नहीं है । चाहती अवश्य हूँ मैं भी कि बाहर-भीतर एक-सी बनसकूँ, परन्तु इस जीवन में यह सम्भव नहीं रहा राजन !"

राजन—"असम्भव कोई वस्तु नहीं है मधु ! शुद्ध हृदय की प्रेरणा क्या कुछ नहीं कर सकती ? तुम गंगा-माता की गोद में सोकर जीवन की कठिनाइयों से दूर भागजाना चाहती हो, परन्तु यह दुर्बलता

है। मैं अपनी मधु को जहाँ चंचल, नटखट और यौवन के प्रवाह में तरंगित देखना चाहता हूँ वहाँ उसमें उस बल कीभी झाँकी पानेका आकांक्षी हूँ कि जिससे वह समस्त संसार से अकेली जूझसके, संसार की निर्बलताओं को बल प्रदान करसके, वह शक्ति बने, चंडिके, महा-चंडिके मधु!"

मधु ने राजन के यह शब्द सुनकर नेत्र बन्द करलिए और धीरे-धीरे राजन का हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाना प्रारम्भ करदिया। परन्तु उसके नेत्रों से अश्रु-धारा बहरही थी। लम्बे-लम्बे श्वासों के उभार से वक्षःस्थल पर एक थिरकन पैदा होगई थी। राजन ने मधु के धड़कते हुए दिल पर अपना हाथ रखदिया और तनिक झुककर मधु के कान तक अपने मुख को लेजातेहुए बोला, "तुमने जानपड़ता है अपने जीवन में आदमियों का एक मेला लगाया है मधु! परन्तु उसमें तुम्हें कोई आदमी न मिल सका। इसी निराशा ने तुम्हारे जीवन को आशाओं से रिक्त करदिया है।"

और मधु फूट-फूट कर रोपड़ी। उसने राजन का हाथ कसकर पकड़ लिया। राजन भी एक क्षण के लिए प्रस्तर बनगया, परन्तु तुरन्त ही मधु का सिर अपने हाथों में लेकर तनिक उभारते हुए बोला,—"चलो मधु! तुम्हारे कल के लगाये हुए पौधों को पानी देना है। नहींतो वह सब मुरझा जायँगे।"

और दोनों उठ खड़े हुए। राजन के इस मंदिर के आसपास मधु ने छोटा-सा बगीचा लगा दिया था। पौधे सब जंगल के ही थे, परन्तु उन्हें व्यवस्था दी गई थी, उनकी काटछाँट की गई थी और उनमें प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ मानवकृत सौंदर्य भी सँजोया गया था। इसी बगीचे के बीचोंबीच मधु ने राजन की सहायता से एक चबूतरा बनाकर तैयार किया, जिसपर बैठकर राजन संगीत की साधना करता था। यहीं पर आसपास के रहनेवाले लोग संध्या-समय बैठकर संगीत सुनते थे और अनेकों भाँति से सराहना करते थे। मधु के यहाँ

रहने की भी चर्चा आसपास में फैल गई थी और अब पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियाँ भी बहुत बड़ी संख्या में यहाँ आने लगी थीं।

मधु के यहाँ आने से यह नीरस-सा वातावरण मधुमय हो उठा था। एक जीवन आगया था यहाँ की सुनसान जिंदगी में। एक चहल-पहल पैदा हो गई थी और आस-पास के बच्चे भी दिन में मधु के पास खेलने के लिए चलेआते थे। यह छोटी सी कुटियाँ। यह छोटा सा मन्दिर, यह छोटी सी बगिया—सभी तो विश्रान्त पथिक के लिए चार क्षण को आश्रय प्रदान करने का सहारा बन गये थे। राजन मधु का यह प्रयास देखता और मन ही मन मुग्ध हो उठता था। प्यार के अपार सागर में उमंग भरी लहरें उठने लगी थीं और वह एक क्षण के लिए मुग्ध मन होकर मधु में खो जाता था।

—२—

आज मधु को नृत्य करना था। राजन ने अपना प्रेम-संगीत प्रारम्भ किया और मधु नृत्य करती हुई मन्दिर के सामने आगई। आसपास के वायुमण्डल में संगीत और नृत्य का मधुर स्वर छागया। श्रोतागणों ने मंत्र-मुग्ध होकर अपने नेत्र और कानों को राजन तथा मधु के संगीत-नृत्य से बाँधदिया। ताल और स्वर का सुन्दर समागम था, जिसमें यह भोले-भाले पर्वतीय लोग अपने को भुलाकर भगवान् के चरणों में पहुँच गये थे।

मधु ने नृत्य की सुन्दर-से-सुन्दर कला प्रदर्शित की, परन्तु एकबार भी किसी ने उसकी सराहना न की। मधु का मन खीझ उठा। उसका हृदय व्याकुल होगया और उसके नेत्रों के सम्मुख अपनी नृत्य-शाला का दृश्य आगया जहाँ उसके कोमल अंग की प्रत्येक थिरकन पर न जाने कितने दीवाने बलिहारे जाते थे; मधु के हर नाज़ को अपनी पलकों पर उठाने के लिए उतावले होउठते थे और वाह-वाह की झड़ी लगादेते थे। कहाँ वह आलीशान नृत्यशाला और कहाँ यह बियाबान जंगल का कलाहीन कोना, जहाँ उसके नृत्य का कोई पारखी ही नहीं था।

मधु ने खीझकर मन-ही-मन कहा 'यह मूढ़ गँवार लोग क्या जानें कला की परख !' परन्तु उससे नृत्य बन्द नहीं हो सका। उसने अनुभव किया कि आज राजन के संगीत में और दिन की अपेक्षा कहीं अधिक मिठास था, उसके स्वरों में कहीं अधिक थिरकन थी और उसके गायन में कहीं अधिक तन्मयता। राजन नेत्र बन्द करके गारहा था। परन्तु उसके कान मधु के पैरों में बँधे घुँघरुओं की प्रत्येक टंकार से स्वर लेकर अपनी वाणी को मधुरता, सरसता और कोमलता प्रदान कर

रहे थे।

आज राजन ने खूब गाया। सभा के पश्चात् सभीने कहा और कहा मधु ने भी, परन्तु मधु के नृत्य की सराहना केवल राजनने ही की। सबलोग चलेगये तो राजन ने मधु के दोनों हाथ अपने हाथों में पकड़, अपनी ओर खींचकर पास बिठलाते हुए कहा—"खूब नाचती हो मधु! सचमुच प्राण डालदेती हो नृत्य में।"

मधु—"व्यर्थ न बनाओ राजन! वह नृत्य ही क्या जो दर्शकों को प्रभावित न करसके। मेरा आजका नृत्य मुझे ही रूखा-रूखा प्रतीत हो-रहा था। किसी ने भीतो सराहना नहीं की।"

राजन—"बड़ी भोली हो मेरी मधु! सराहना की भूख लगी है तो-लो मैं सराहना की झड़ी लगा देताहूं; परन्तु इन वनवासियों के मौन-अवश्य में कितनी स्वाभाविक सराहना छुपी है इसका अनुभव तुम न करसकीं। एक दिन कर अवश्य सकोगी मधु! इसका मुझे पूर्ण विश्वास है।"

मधु ने वास्तव में अपने मन-ही-मन लज्जा का अनुभव किया और उसकी उथली विचार-धारा की आकांक्षाओं को राजन की भारी विचार-धारा के नीचे दबजाना पड़ा। वह बोली नहीं एक शब्द भी, केवल राजन के साथ कुछ सटकर बैठते हुए इतना अवश्य कहा—"मैं कितनी उथली हूं राजन! तुम सच जानना कि मैं आज नाच ही न सकी। मेरे पैर प्रत्येक ताल पर प्रशंसाओं का आधार लेकर उठने के आदी हैं। इन भोले-भाले भक्त-जनों की मौन-प्रशंसा का रसास्वादन मैं बिलकुल भी नहीं कर सकी। मैं बहुत लज्जित हूँ राजन!"

राजन—"परन्तु नृत्य तुम्हारा नीरस नहीं था। मेरी आत्मा इसे नहीं मान सकती मधु! तुम्हारे नृत्य ने मेरे स्वर को बल प्रदान किया और तुमने सुना नहीं क्या अंत में सभी लोग कह रहे थे कि आज राजन ने बहुत मधुर गान गाया। यह सब क्या था मधु? तुम्हारे नृत्य ने मेरे संगीत को मधुर-स्वर प्रदान किया और मेरा कंठ उससे प्रभावित होकर

मधुर बनगया। आज मैं नहीं, तुम गारही थीं मधु ! क्या सचमुच तुमने अनुभव नहीं किया यह ?"

मधु ने राजन की बात का उत्तर केवल नेत्रों-ही-नेत्रों में देकर हलके से कहा, "गायन आज वास्तव मे बहुत मधुर था। मैं नृत्य बन्द करना चाहतेहुए भी संगीत के स्वरों में इस प्रकार बँधगई थी कि बन्द न कर सकी। मेरा मन अन्दर-ही-अन्दर अपनी प्रशंसा न सुनकर खीझ रहा था, दुःख रहा था, नीरस हो रहा था परन्तु पैर मानो किसी विद्युत्-यंत्र द्वारा चालित होकर अपना कार्य करते जा रहे थे। रुकना चाहते हुए भी मैं रुक न सकी, राजन !"

राजन ने मधु को आज प्रथम बार अंक में भरने का प्रयास किया, परन्तु मधु कूदकर दूर जाखड़ी हुई और नेत्रों की पुतलियों को घुमाकर बोली, "यह क्या है जी ! अपने अतिथि के साथ इस प्रकार का व्यवहार क्या आपको शोभा देता है ?"

राजन सहम गया, परन्तु उसने देखा कि मधु मुस्करा रही थी। धीरे-धीरे मधु फिर पास आकर नीची गर्दन किये राजन के हाथ अपने हाथ में लेकर बोली, "निर्लिप्त रहने का प्रयास करो राजन ! मुझमें फँसने से तुम्हारी साधना नष्ट हो जायगी। मैं चाहती हूँ कि तुम मुझे अपनी साधना का साधन बनाओ, परन्तु साधन..........नहीं-नहीं राजन, मैं साधना का साधन नहीं बनसकती। मैं सत्य कहती हूँ कि मैं इस जीवन में न जाने कितने पाप कर चुकी हूँ। मेरा जीवन कलुषित है। तुम उस कालिख को अपने मुखपर लपेटकर संसार के उपहास की सामग्री न बनो।"

राजन कुछ बोला नहीं। वह मधु को वहीं छोड़कर गंगा के किनारे घूमने निकलगया। मधु को समझने का वह जितना भी प्रयास करता था उतनीही उसकी विचार-धारा सुलझने के स्थान पर उलटी उलझने लगती थी। मधु राजन को प्यार नहीं करती, यह वह विश्वास नहीं कर सकता। आज यदि राजन को मधु के प्राणों कीभी आवश्यकता हो तो

सम्भवतः वह 'न' न कह सके। आज वह राजन के लिए राजन को पाना नहीं चाहती, विचित्र बात थी। राजन बहुत देरतक इसी समस्या पर विचार करतारहा, परन्तु मधु की गहराई तक न पहुँच सका।

मधु एकांत में मन्दिर के सामने चबूतरे पर बैठी मस्ती के साथ गुनगुना रही थी राजन का मधुर संगीत, और फिर अचानक निर्लिप्त-सी खड़ी होकर अपने से ही बोली, 'यह कदापि नहीं हो सकता। राजन के साथ जीवन-नौका खेने में मुझे कोई आपत्ति नहीं, परन्तु अपने जीवन की समस्त ग्रंथियों को एक-एक करके राजन के सामने खोलदेने के पश्चात्। उसे भ्रम में डालकर नहीं। परन्तु वह ग्रंथियाँ'.......और ग्रंथियों का ध्यान आतेही राजन एक भोले-भाले नादान ब्राह्मण-शिशु के समान एक खिलौने के रूप में उसके सम्मुख आ गया।

मधु के सामने एक ओर पुराना, शताब्दियों का पुराना, खुर्राट समाज अपने श्वेत केशों को तूफान के झोकों में उड़ाता हुआ खड़ा था। वायु के प्रबल वेग से उसके दहकते हुए नेत्र अंगारों की भांति जल कर चमक उठे थे। मधु ने उसी के पास खड़ी हुई अपनी प्रतिमा पर दृष्टि डाली, तो वह भी किसी प्रकार उस समाज से कम पुरानी नहीं थी। वह प्रतिमा समाज के बाँकेपन पर मुस्करा कर बोली, 'समाप्त हो चुका महाशय! आपका रौब-दौब। हमने सब देख लिया तुम्हारा शासन। हमारे बाल भी धूप में नहीं पके हैं। यदि तुम्हारे पास बल है तो हमारे पास यौवन है, आकर्षण है। तुम किसी को धक्के मारकर गिरा सकते हो, तो हम प्यार की लोरियाँ देकर उसके घावों पर मरहम लगा, सकते हैं। हमारे अन्दर फिर भी मानवता है और तुम............।'

'चुप रह चांडालिनी!' समाज ने मुँह बनाकर कहा। 'तूने सभ्यता और संस्कृति पर कुठाराघात किया है। जाति के सपूतों को अपने यौवन-जाल में फँसाकर मेरे प्रकोप का भाजन बनाया है।......'

और इसपर मधुखिलखिलाकर हँसपड़ी। फिर धीरेसे आप-ही-

आप बोली, 'मूर्ख ! भाजन बनाकर तो तेरा उपकार ही किया है मैंने; परन्तु एक तू है कि जो केवल पाप करना ही सीखा है, उपकार करना नहीं जानता ।'

और इसी समय मधु ने एक ओर राजन को शिशु के रूप में एक सर्पिणी से खेलतेहुए देखा । कितना दुस्साहस था यह राजन का । मधु भयभीत होकर चिल्लाउठी, "राजन" ।

राजन—"क्या है मधु ?" पास आकर मधु को सँभालते हुए राजन ने पूछा, परन्तु मधु बेहोश हो चुकी थी । राजन मधु को अपने दोनों हाथों पर उठाकर कुटिया में लेआया और खटिया पर लिटाकर उसके मुख पर गंगा-जल के छींटे दिये । मधु ने थोड़ी देर में आँखें खोलीं तो राजन पास बैठा एक ताड़ के पत्ते से मधु को हवा कररहा था ।

मधु—"राजन ! मैं डरगई । मैं तुम्हें धोखा दे रही हूँ राजन ! तुम इस सत्य को समझलो तो मैं सच कहती हूं कि मुझे इससे बहुत बड़ी शान्ति मिल सकेगी ।"

राजन ने मधु के मस्तक पर उड़ने वाली अलकों को अपने बाँये हाथ से समेटते हुए बहुत गम्भीरतापूर्वक कहा—"मधु ! यदि मैं यह मान भी लूं कि तुम मुझे धोखा देरही हो तो तुम्हें भी यह मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि राजन धोखा नहीं खारहा है । मधु जो कुछ भी है राजन उसे वही समझ रहा है ।"

मधु सहम गई । उसके मस्तक पर पसीने की बूंदें झलक आईं और वह गिड़गिड़ाकर बहुत दीनतापूर्वक बोली, "तब क्या तुम सब-कुछ जानगये हो राजन ! परन्तु मैंने यह सब जानबूझकर नहीं किया ।"

राजन ने अपनी धोती के पल्ले से मधु के नेत्रों तथा मस्तक को पोंछते हुए मुस्कराकर कहा, "तुम बड़ी बावली हो मधु ! तुम मुझे बच्चा समझकर, मेरी दुर्बलताओं को देखकर, उनपर तरस खा-खाकर, भयभीत होरही हो और मैं तुम्हारा यह नाटक देख-देखकर मन-ही-मन

मुस्कराकर आनंद-लाभ कररहा हूँ । परन्तु नाटक तुम खूब करती हो मधु ! इसमें कोई संदेह नहीं ।"

मधु एक शब्द भी न बोली इसके पश्चात् । उसने राजन के नेत्रों में नेत्र डालकर देखा तो उसे वहाँ फिर वही भोलापन मिला। उसकी वाणी का गाम्भीर्य उनमें लेशमात्र भी नहीं था । वाणी में गर्जन था और नेत्रों में मुस्कराहट । मधु एकदम विचलित-सी होउठी और वह तुरन्त बैठी होती हुई बोली, "राजन ! अब मैं यहाँ नहीं रह सकती ।"

राजन—"न रहना, परन्तु इस समय तुम्हारा चित्त स्वस्थ नहीं है, तुम आराम करो। स्वस्थ होनेपर चली जाना। मैं तुम्हारे जीवन में रुकावट बनकर कभी नहीं आऊँगा। मैं तो सहयोगवादी व्यक्ति हूँ और उसी सिद्धान्त के आधार पर तुमसे भी प्रार्थना करूँगा कि जीवन में सहयोग से चलने का प्रयास करो।"

इतना कहकर राजन कुटिया से बाहर जाने लगा तो मधु ने गिड़-गिड़ा कर कहा, "राजन ! मुझे क्षमा करदो। मैं डरती हूँ कि कहीं किसी दिन तुम मुझे गलत न समझने लगो ।"

राजन—"राजन किसी व्यक्ति को बार-बार नहीं समझता मधु ! उसने मधु को जोकुछ भी समझा और परखा है वह जीवन के अन्तिम क्षण तक वही रहेगा। उसमें परिवर्तन आनेवाला नहीं। उसे कोई सिद्धान्त नहीं बदल सकता, कोई परिपाटी नहीं बदल सकती, कोई प्रति-बन्ध नहीं बदल सकता, कोई आपत्ति, रुकावट या कठिनाई नहीं बदल सकती ।"

इतना कहकर राजन कुटिया से बाहर चला गया। मधु चुपचाप खाट पर लेटीरही । उसका मस्तिष्क इस समय वास्तव में अस्वस्थ था, एक बेचैनी-सी थी बदन में। वह राजन को पुकारकर अपने पास बिठ-लाना चाहती थी, परन्तु बिठला न सकी। अपने हृदय की व्यथा को वह राजन के सामने रखकर एक बार सर्वदा के लिए निश्चिन्त होजाना चाहती थी, परन्तु उसके मन का चोर उसे दुर्बल बनाये हुए था। कहना

चाहते हुए भी वह कुछ कह न पाती थी। वाणी मौन होजाती थी राजन के सम्मुख और नेत्र निहारने लगते थे उसकी सौम्य-मूर्ति को। यदि राजन पूछता भी कि 'हाँ किस लिए बुलाया है मुझे', तो मधु एक शब्द भी न कहपाती, केवल देखती भर रहजाती थी उसके मुख पर।

थोड़ी देर में राजन अपनी धोती की फेंट में बहुत से फूल लेकर कुटिया में आया और उसने यह सभी फूल खटिया पर पड़ी मधु के ऊपर बिखेर दिये। फिर मधु के पास बैठकर फूलों से उसे धीरे-धीरे सजाते हुए बोला, "मधु! राजन ने तुम्हें पहिचान लिया, परन्तु तुमने अभी अपने राजन को नहीं पहिचाना।"

मधु चुप थी।

राजन फिर बोला, "जिस दिन तुम इस निर्जन वन में आकाश से तारिका के समान टूटकर मेरी कुटिया के सामने आगिरी थीं तो मैंने समझा था, चलो अच्छा ही हुआ; एक था, अब दो होगये। परन्तु अब धीरे-धीरे अनुभव कररहा हूँ कि तुमने यहाँ आकर तो एक अच्छा खासा समाज बना लिया है।"

समाज का नाम सामने आते ही मधु एकदम प्रकम्पित हो उठी। उसके तमाम बदन में मानो एक सिहरन-सी आगई। राजन ने मधु में होनेवाले इस परिवर्तन को देखा और देखकर मुस्करातेहुए कहा, "समाज कोई भयभीत होनेकी वस्तु नहीं है मधु! भयभीत होने-की वस्तु तो इसे बना दिया गया है। आज के समाज का जो ढाँचा तुम देखरही हो वह निर्जीव हो चुका है। यह राजन जो तुम्हारे सामने इस समय बैठा है, जिसे सम्भवतः तुम प्रेम भी करती हो, परन्तु यदि यह कहीं अचानक निर्जीव होकर तुम्हारे सामने आजाय.......।"

मधु—"ऐसा न कहो राजन!" मधु ने राजन के मुख पर हाथ रख-कर उसकी वाणी को रोकदिया।

राजन—"कहने से व्यक्ति मरता नहीं मधु! तुम नारी हो और नारी कोमलता की प्रतीक है। भयभीत होना तुम्हारा स्वभाव है और

भयभीत होती हुई तुम मन-मोहक भी प्रतीत होती हो, परन्तु यह पाठ तुम हमें पढ़ाने का प्रयास न करो मधु ! यह राजन, जो तुम्हारे सामने बैठा है, इसमें कितना बल है, एक बार यह परखने का अवसर तो दो इसे।"

राजन के शब्दों ने मधु के हृदय को साहस से भर दिया। उसके उतरेहुए मुख-मण्डल पर राजन ने देखा कि अलौकिक कान्ति दमदमा-उठी। मधु के नेत्रों में राजन की प्रतिमा साकार होगई और वह गर्दन नीची ही किये बहुत से फूलों को गोद में भर कुटिया से बाहर निकल कर मंदिर के सामने वाले चबूतरे पर आगई। उसके पैरों के घुँघरू एक बार फिर बजउठे और कुटिया के अन्दर से राजन का मधुर संगीत तरंगित होकर आसपास के वायुमण्डल को भरने लगा। राजन भी कुटिया से बाहर निकल आया। वह गारहा था और मधु इठला-इठला कर एकान्त में नाच रही थी। इस नृत्य को देखने वाले थे इस वन के वृक्ष और सराहना करने वाले थे मन्द पवन के मीठे झोंके तथा कभी-कभी पक्षियों के अटपटे से बोल। राजन का स्वर वन के स्वच्छ वायुमण्डल में गूंज उठा। उसी समय मधु तथा राजन ने देखा कि नभ-मण्डल सुहा-बने बादलों से आच्छादित होता जा रहा था। मधु की अलकें नृत्य करते समय पवन के मन्द-मन्द झकोरों में उड़ रही थीं और राजन गा रहा था मधुर स्वर में—

बाले ! तेरी अलकों में
उलझाना मन, बन्धन कटजाना।
तेरी वेणी में विद्युत है,
विद्युत में जग का उजियाला,
उजियाले में झम-झम करती
बरस रही पृथ्वी पर हाला;
करदेती जग को मतवाला,
झूम चला जग दीवाना।

बाले ! तेरी अलकों में
उलझाना मन, बन्धन कटजाना।

तेरी अलकें सिहर-सिहर कर
मेघों में घिर-घिर आती हैं,
सस्मित पलकें चूम-चूम कर
नयनों को ढकने जाती हैं,
नयनामृत छकने जाती हैं,
बुन जातीं नभ में ताना।
बाले ! तेरी अलकों में
उलझाना मन, बंधन कटजाना।

तेरी अलकों में उलझा है
मेरा मन यह भोला-भाला,
पवन-पालनों में परियों से
क्रीड़ा करता घन मतवाला।
उलझाकर मुझको भी बाले !
जीवन से सुलझा जाना।
बाले ! तेरी अलकों में
उलझाना मन, बंधन कट जाना।

—३—

मधु आज जीवन में प्रथम बार बहुत प्रसन्न थी। उसका अंग-अंग पुलकायमान था। जीवन का सारा आनन्द, सारी उमंगें, सारा उल्लास, और आशाएँ मानो सिमटकर उसके अंग में भर गई थीं। नयनों की पुतलियाँ नृत्य कररही थीं, तन रोमांचित होउठा था, वक्षस्थल में उभार था, प्राणों में मस्ती थी और चाल, उसकी तो कुछ पूछो ही नहीं। आज वह पंजों-ही-पंजों पर चलरही थी, एड़ियाँ अधर।

राजन मधु को साथ लेकर बोला—"आज का दिन कितना सुहावना है री, मधु!"

"होगा।" इठलाते हुए मधु ने कहा।

"देख रही हो चन्द्रमा इन पत्तियों के झुरमुट में से झाँककर कुछ कह रहा है।" राजन ने मधु का मुख, अपनी दोनों हथेलियाँ मधु के सिर और चिबुक से लगा कर, ऊपर उठातेहुए उसकी दृष्टि चन्द्रमा पर टिकाकर कहा।

"कहता होगा।" लापरवाही से मधु ने कहा।

"जानती हो क्या कह रहा है?" राजन ने पूछा।

"मैं क्यों जानूँ?" और मधु ने इठलाकर नेत्र बन्द कर लिये। मधु फिर एकदम मुस्कराती हुई फुदककर चाँदनी में दूर जाखड़ी हुई और चन्द्रमा की ओर टकटकी लगाकर बोली, "अरे चन्दा मामा! कहो न! तनिक जोर से कहडालो, तुम क्या कहरहे हो। यह हमारे राजन बाबू हमें पूछ-पूछ कर परेशान किये डाल रहे हैं कि तुम क्या कहते तो?"

राजन ने आगे बढ़कर मधु के दोनों कानों पर हलके से अपनी दोनों हथेलियाँ रखकर दबाते हुए उसे अपनी ओर खींचकर सामने खड़ा कर लिया। फिर धीरे से बोला, "आज बड़ी नटखट बनगई हो मधु!

परन्तु मैं सच कहरहा हूँ कि चन्द्रमा कुछ कहरहा है। तुम समझ नहीं पाओगी उसकी भाषा। अपरिचित हो न इससे। बड़े नगर की अट्टालिकाओं में रहनेवाले व्यक्ति चन्द्रमा से सम्बन्ध नहीं जोड़ते।"

मधु—"समझी राजन! चन्द्रमा को भगवान् ने केवल जंगली लोगों के लिए ही बनाया है। यही कहना चाहते हो न तुम।" और इतना कहतेहुए मधु ने राजन के दोनों हाथों को अपने हाथों में लेकर चारों हाथ आगे बाँध लिए और फिर एक बार चारों हाथ ऊपर उठाकर चन्द्रमा के सम्मुख जोड़ते हुए बोली, "चन्दा मामा! क्षमा करना मेरी धृष्टता। परन्तु अब तो मैं आपके जंगल में आकर बसगई हूँ। बसगई नहीं, मामा! तुम्हारे राजन द्वारा बन्दिनी बनालीगई हूँ।"

राजन—"ऐसा न कहो मधु! तुम्हें बन्दिनी बनाने से पूर्व राजन स्वयं बन्दी बनचुका है। आज उसे अपने से पूर्व हर समय तुम्हारा ध्यान रखना होता है। तुम सच जानो मधु! तुम्हारे यहाँ आने से पूर्व मेरे जीवन में कोई नियंत्रण नहीं था। तुमने मेरे अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्था प्रदान की है।"

मधु—"तो यों कहिए कि मैंने तुमको चिंता का उपहार दिया है।" मुस्कराकर मधु ने इठलाते हुए कहा।

राजन—"चिन्ता नहीं मधु! वह चिंता ही क्या जिसकी व्यवस्था करने में हृदय आनन्द से उल्लसित होउठे? मन मौजों में बहजाय और जीवन का तमाम श्रम एक क्षण में काफूर होजाय। तुम्हारे यहाँ आने से पूर्व मैं कितना काहिल था, यह तुम आज जानकर क्या करोगी?"

राजन और मधु इसी प्रकार प्रेम की बातें करते हुए कुटिया से कुछ दूर एक पगडंडी से आगे बढ़कर पासवाली पहाड़ी की चोटी के निकट पहुँचगये। इस ऊँचे शिखर के ठीक नीचे गंगा की वेगवती धारा बहती थी। चन्द्रमा की चाँदनी में इस समय वह ऐसी प्रतीत होती थी मानो कहीं से चांदी का स्रोत उबल कर सरिता के रूप में बहता चला आरहा

हो। मधु ने राजन का सहारा लेकर एक बार उधर झाँका तो अवश्य, परन्तु वह भयभीत होकर, तुरन्त ही पीछे हटतेहुए बोली, "बड़ा भय लगता है राजन ! यह पगडंडी तो बड़ीही भयानक है। यदि एक शिला भी टूटकर नीचे गिर जाय तो बस······"

राजन—"तुम ठीक कहती हो मधु ! परन्तु यह पगडंडी न जाने कितने दिन से इसी प्रकार चली आरही है। दुनियाँ आती है और चलीजाती है। परन्तु जब इसके गिरने का समय आयगा तो वह भी अवश्य आयगा लेकिन पगडंडी बन्द नहीं होगी। इससे तनिक हटकर और बना ली जायगी।"

यहीं पर एक स्वच्छ पर्वत-शिला पर मधु और राजन आज न जाने कितनी देरतक बैठेरहे और प्रेम की बातें बिलकुल न हुईं हों ऐसी भी बात नहीं, परन्तु मधु अपने हृदय के उद्‌गारों को स्पष्ट करने का लाख प्रयास करने पर भी न करपाई। राजन ने मधु को कुछ कहनेका अवसर ही न दिया। वह बार-बार अपनी राम-कहानी छेड़ने का प्रयास करती थी परन्तु राजन बीच में ही कोई ऐसी मोहक बात छेड़बैठता था कि उसके आनन्द की उमंगों में वह बात वहीं-की-वहीं रहजाती थी।

राजन ने मधु को अपने में समेटने का प्रयास करते हुए कहा, "मधु ! मैं जानता हूँ तुम क्यों डर रही हो।"

मधु—"क्यों डर रही हूँ भला ?" मधु ने उत्सुकता से पूछा।

राजन—"तुम डरती हो कि कहीं संसार के अन्य भौंरों की भांति मैं भी केवल तुम्हारे मधु को चूसकर तुम्हारी प्याली रिक्त कर देने वाला ही भौंरा न होऊँ।"

मधु ने केवल राजन के मुख पर देखा, शब्द एक भी न कहा।

राजन—"तुम्हारा भय स्वाभाविक ही है मधु ! परन्तु राजन फूल का मधु चूसकर उसे फेंक देनेवाला भ्रमर नहीं। वह तो सूखे सुमन में मधु भरकर उसे हराभरा करने का स्वप्न देखरहा है। मैं चाहता हूँ कि निर्जीव पुष्प में प्राण डालकर अपनी मधु को सुरक्षा

के साथ ताज़गी प्रदान करूँ, जीवन प्रदान करूं।"

मधु कुछ भी न समझ सकी। लम्बे-चौड़े आकाश के नीचे, लम्बे-चौड़े विशाल भूधर की शिला पर एक महान् आत्मा की अंक में उसने अपने को सुरक्षा के साथ, सुख तथा शांति के साथ बैठाहुआ पाया। राजन एक शिशु है, वह मधु से धोखा खारहा है, वह मधु को नहीं समझपाया, वह मधु का रहस्य जानकर पछतायगा और उस मार्ग से लौट जायगा जिसपर वह पग बढ़ाचुका है, यह सभी बातें उसे स्वप्न-तुल्य प्रतीत हुईं।

मधु ने धीरे से हाथ बढ़ाकर राजन के पैर पकड़ते हुए कहा—"मुझे क्षमा करदो राजन!" परन्तु राजन ने पैर छुड़ाते हुए मधु के दोनों हाथ पकड़लिए और सस्नेह कमर पर सहारा देकर उठाते हुए मुस्करा कर बोला, "तुमने सुना मधु, गंगा क्या कहती जारही है? जंगल के शान्त वातावरण में गंगा की धारा का निरन्तर सुनाई देनेवाला नाद केवल एक ही संदेश देता है मधु! बस एक ही। यह कहता है, रुको नहीं, बढ़े चलो। तुम भी मधु रुकने का प्रयास न करो। बढ़ती चलो इस अपरिचित के साथ। दो अपरिचित मिलकर हीतो चिर परिचित बनजाते हैं मधु!"

मधु के नेत्रों में स्नेह-जल छलछलाआया और वह अब अधिक देर वहाँ न ठहर सकी। राजन का प्रेम कितना स्वच्छ और निर्मल था परन्तु जब उसे यह पता चलेगा कि मधु क्या है तो क्या उसका स्वच्छ हृदय टूटकर टुकड़े-टुकड़े नहीं होजायगा? यही वह विचार था जो मधु को व्याकुल किये देरहा था। वह प्रसन्न होने का प्रयास करनेपर भी प्रसन्न नहीं हो पाती थी। इसके पश्चात् दोनों व्यक्ति अपनी कुटिया पर आगये।

आज की रात्रि फिर मधु के लिए उसी प्रकार व्यतीत हुई जिस प्रकार वह प्रथम रात्रि हुई थी, जब वह यहाँ आई थी। राजन को नींद आने में देर न लगी परन्तु मधु प्रयास करनेपर भी न सो सकी। वह बार-बार सोने

का प्रयास करती थी और कोई आकर मानो उसके हृदय को मसोस डालता था, कहता था, 'मधु ! इतनी स्वार्थिन न बन। आखिर कितने दिन इस संसार में जीवित रहना है ? क्यों इस चंद दिन के यौवन की तृष्णा के आवेश में एक पवित्र आत्मा को तू निगलजाना चाहती है ? अंधी बनने का प्रयास नकर' और वह चौंककर उठ बैठती थी।

इस बार पलकें मलती हुई वह कुटिया से बाहर निकली तो चन्द्रमा ठीक उसके सिर पर चढ़कर मुस्करा रहा था। मधु ने चन्द्रमा पर दृष्टि डाली तो उसे लगा मानो चन्द्रमा उसके साथ उपहास कर रहा है। वह लजागई और अनायास ही नीचे की ओर बढ़नेवाली पगडंडी पर बढ़कर सीधी गंगा के किनारे से होकर हृषीकेश की ओर जाने वाली सड़क पर आगई। उसने चारों ओर देखा, कहींपर भी कोई नहीं था। एक-दो बार पीछे पत्तों की खड़खड़ाहट सुनाई दी। उसने चौकन्नी होकर उधर देखा, परन्तु वहाँ कोई नहीं था।

मधु ने सोचा, 'यह अच्छा अवसर है यहाँ से भाग निकलने का। राजन सो रहा है। सवेरे उठकर मेरी खोज करेगा और मुझे खोजने पर भी न पायगा तो समझ लेगा कि मैं धोखेबाज थी। उसे मेरे प्रति घृणा हो जायगी। परन्तु उसकी पूजा तो नष्ट नहीं होगी, उसका मंदिर तो बना रहेगा, उसकी मान-मर्यादा को तो धक्का नहीं लगेगा और एक पतिता से प्रेम करनेवाला पागल दीवाना कहलाकर तो वह और उसकी आगे आनेवाली संतानें तिरस्कृत नहीं की जा सकेंगी।'

मधु के हृदय पर गहरी ठेस थी। वह भागजाने का प्रयास करते हुए भी नहीं भाग पारही थी। उसके पैर लड़खड़ा रहे थे। परन्तु फिर भी वह किसी प्रकार आगे बढ़ती गई। पहाड़ी के दूसरे मोड़ पर मधु ने ज्यों ही मुड़ने का प्रयास किया तो उसने स्तम्भित होकर देखा कि वृक्ष की छाया में, पगडंडी के ठीक नीचे, सड़क से सटा हुआ राजन खड़ा था। वह धीरे से आगे बढ़कर मधु के सामने आगया और मधु वहीं रुक गई।

राजन—"रुको नहीं मधु ! मैं तुम्हें इस रात्रि में तुम्हारे मार्ग पर सुरक्षा के साथ लगाने के लिए आया हूँ । आज मैं तुम्हें रोकूँगा नहीं।"

मधु—"हाँ मुझे जानेदो राजन ! मैं तुमसे पैर पड़कर बिनती करती हूँ कि तुम मुझे जाने दो।" डबडबाये नेत्रों से अश्रु बरसाते हुए मधु ने कहा।

राजन—"रोओ नहीं मधु ! मैं जानता हूँ कि तुम्हें जाना ही होगा। परन्तु जाने से पूर्व अपना कुछ पता-ठिकाना तो बतलाजाओ। तुम्हें मेरी आवश्यकता शायद जीवन में न पड़े, परन्तु मुझे तुम्हारी आवश्यकता सर्वदा रहेगी। हो सकता है तुम्हारे एक बार दर्शन करने के लिए मुझे तुम्हारे पास फिर आना पड़े।"

मधु ने अपना पता, सहर्ष, राजन को बतलादिया। इसके पश्चात् राजन मधु को सड़क पर बहुत दूर तक छोड़ने के लिए आया। वह रात दोनों ने सड़क पर बैठे-ही-बैठे गुजार दी। रातभर कोई सवारी मधु को नहीं मिली। सवेरा होने पर हृषीकेश से लक्ष्मणझूला के लिए बहुत-सी सवारियों का प्रबन्ध था। उन्हीं में से एक में राजन ने मधु को बिठलादिया।

सवारी में बैठने से पूर्व मधु ने राजन के पैर छूने के लिए हाथ बढ़ाया तो राजन ने पैर पीछे हटातेहुए धीमे स्वर में कहा, "मधु ! मुझे पाप न लगाओ। मैं तुम्हें देवी मानकर हृदय में स्थापित कर चुका हूँ। तुम्हारा वही स्थान मेरे इस जीवन में बनारहेगा। मेरी देवी इतनी पाषाण-हृदया होगी, यह मैं नहीं जानता था। परन्तु इस पाषाण को मोम बनाकर पिघलादेने की शक्ति राजन में है, यह तुम एक दिन देखसकोगी।"

मधु के नेत्रों से छलाछल अश्रुओं की झड़ी लगगई और उसने कोट की जेब से रूमाल निकालकर अपने आँसू पोंछतेहुए कहा, "राजन, अपनी कोई निशानी भी नहीं दी तुमने।"

राजन मुस्कराकर बोला, "निशानी ! निशानी तुम्हें ऐसी दी है मधु कि जो रातदिन तुम्हारे साथ रहेगी । उसे दूर करनेका प्रयास करने पर भी तुम उसे दूर नहीं करसकोगी ।"

मधु मौन हो गई । कुछ क्षण के लिए दोनों के नेत्र आपस में जुड़े रहे । सवारी चलपड़ी और बहुत शीघ्र दोनों एक दूसरे की दृष्टि से ओझल होगये ।

मधु चलीगई और राजन अकेला रहगया । उसका हृदय इस समय बहुत भारी था । एक बार जी में आया कि वह भी इस मंदिर को छोड़-छाड़ कर कहीं और चलाजाय, क्योंकि यहाँ रहनेपर मधु की बनाई हुई हर चीज उसे प्रतिक्षण मधु की याद दिलाती रहेगी । उसका भावुक हृदय सहन नहीं करसकेगा इन स्मृतियों के नित्य नये आघातों को । परन्तु वह ऐसा न करसका । कुटिया में पहुँचा तो वहाँ सुनसान-ही-सुनसान दिखलाई दिया । मधु के आने से पूर्व भी वह वहाँ अकेला ही रहता था । उसका कोई साथी नहीं था, परन्तु तब कभी उसे वह कुटिया इतनी सुनसान नहीं प्रतीत हुई थी । वहाँ के वृक्षों से उस समय उसका सीधा सम्बंध था परन्तु अबतो प्रत्येक वृक्ष से मानो मधु की प्रतिमा झाँकती-सी प्रतीत होती थी । राजन को लगा कि मधु पीछे-पीछे आ रही है और उसने देखा मधु सचमुच दौड़ी आ रही थी । वह चिल्ला रही थी, "राजन, राजन, मैं अचेत हुई जा रही हूं, मुझे सँभालो ।"

राजन पागल की तरह उधर को दौड़ पड़ा और अश्रुओं से भीगी मधु को अंक में भरकर ऊपर उठाते हुए बोला, "तुम आगई मधु ! मुझे पूर्ण विश्वास था कि तुम नहीं जासकोगी ।"

मधु—"मैं वास्तव में नहीं जासकी मेरे राजन ! अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं से जाने का प्रयास करतेहुए भी मैं न जा सकी ।"

राजन शान्त था । उसका गला रुंध गया था, परन्तु हृदय में एक उभार था । वह फिर पागल की तरह मधु को खटिया पर लिटाकर

वृक्षों की ओर मुख करता हुआ बोला, "देखा वृक्षो ! तुमने देखा ! मधु लौट आई । वह अपने राजन को इस प्रकार अकेला छोड़कर अब नहीं जारही है । और फिर मधु के सम्मुख आकर प्रेमार्द्र शब्दों में पूछा, "नहीं जारही हो न मधु ! तुम्हें मुझ पर दया आगई ।"

मधु—"दया नहीं राजन ! मैं जा ही न सकी । मैं निर्बल पड़ गई और अपना कर्तव्य भी न निभा सकी । तुम मेरी दुर्बलता को क्षमा करदेना राजन !"

राजन—"क्षमा माँग रही हो मधु ! तुम वास्तव में बड़ी ही निष्ठुर हो । परन्तु तुम्हें निर्बल बनता हुआ मैं नहीं देख सकता । मैं तुम्हें सबल बनाकर ही अपने साथ रखसकूंगा मधु ! इस बार तुमसे मैं कहता हूं कि तुम जाओ । मैं एक बार तुम्हें वहाँ आकर देखना चाहता हूं । अपने जिस रूप से तुम भयभीत हो, मैं तुम्हें उसी रूप में अपनाना चाहता हूं ।" और इतना कहकर राजन गम्भीर होगया ।

मधु—"मुझे इस समय कुछ न कहो राजन ! मुझे भय लग रहा है । जिस नर्क से निकलकर मैं किसी प्रकार एक बार आसकी हूँ, क्या तुम मुझे फिर उसी में धकेल देना चाहते हो राजन ?"

राजन—"हाँ मधु ! आज मैं चाहता हूं कि तुम वहाँ ही जाओ । तुम वहाँ से भागकर आई हो, एक दुर्बल नारी के रूप में । परन्तु मैं तुम्हारे चरित्र में दुर्बलता नहीं देख सकता । तुम्हें जाकर उस नर्क का कलेजा चीर देना होगा । तुम्हें उस बन्दीगृह की दीवारों को अपनी आत्मिक शक्ति से तोड़देना होगा । तुम विश्वास रखो कि तुम्हारा राजन वहाँ एक दिन अवश्य आयगा । और उसका हृदय-मन्दिर अपनी मधु के लिए सर्वदा उन्मुक्त रहेगा ।"

राजन ने मधु को सहारा दिया और यह दोनों प्राणी फिर सवारी के अड्डे पर आ गये । चलने से पूर्व मधु ने फिर राजन के पैर छूने का प्रयास किया और इस बार राजन ने इसमें कोई आपत्ति नहीं की । मधु ने राजन की चरण-रज लेकर अपने मस्तक से लगाली । राजन ने मधु का

मुख उसकी ठोड़ी पर सहारा देकर ऊपर उठाते हुए कहा, "तुम्हें नया समाज बनाना है मधु ! वह समाज जिसमें यौवन हो, उमंग हो, उत्साह हो, प्रगति हो। वह समाज जो गिरते को सहारा दे सके, गिरते को पीठ पर लात मारने वाले समाज के पैर तोड़ डालते हैं तुम्हें। उस पुराने खूसट समाज की, जो अपने बच्चों पर केवल शासन कर सकता है, उन्हें प्यार नहीं करता, तुम्हें उसकी हड्डियाँ तोड़ डालनी हैं मधु! मेरा विश्वास है कि तुम दुर्गाभवानी का रूप धारण करके उससे संघर्ष कर सकोगी ? विजय निश्चित रूप से तुम्हारी होगी।"

मधु—"आप आयेंगे अवश्य कभी ?

राजन—"अवश्य मधु ! संसार की कोई शक्ति मुझे रोक नहीं सकती।"

मधु—"आपका मन्दिर आपको रोकेगा।"

राजन—"मैं मन्दिर को बदल दूँगा।"

मधु—"आपके भक्त आपको रोकेंगे।"

राजन—"मैं अपने भक्तों को बदल दूँगा।"

मधु—"आपका धर्म आपको रोकेगा।"

राजन—"मेरा धर्म क्या है यह इतने दिन यहाँ रहकर भी मेरी मधु न जानपाई।"

इसके पश्चात् मधु कुछ नहीं बोली। वह चुपचाप जाकर मोटर में बैठ गई और राजन अभी कुछ देर पूर्व की भांति अकेला ही खड़ा रह गया। परन्तु इस समय उसमें उन्माद नहीं था, दीवानगी नहीं थी, बेचैनी नही थी, कुछ करगुजरने की आकांक्षा थी। उसके सामने जीवन का एक नया रूप था। जंगल के एकान्त कोने का वह शान्त वातावरण नहीं। उसके कानों में न जाने कितने प्रकार के स्वर झंकृत हो रहे थे। वह बौखलाया हुआ-सा अपनी कुटिया पर पहुंचा। जाकर एक क्षण के लिए अकेले ही खटिया पर बैठ गया और फिर धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा—

विचलित हो मत हृदय, दुखों में
पलने दे दुख-सुख का प्यार।

मैं नाविक हूं,
जल में ही मुझको रहना है,
उथल-पुथल जल-चंचल-क्रीड़ा,
मूढ़ पथिक किसको कहना है?

अपनी ही जर-जर नौका पर,
खेना है पागल निज भार।
विचलित हो मत हृदय, दुखों में
पलने दे दुख-सुख का प्यार।

पथिक! अकेलेपन का सुख भी,
कौन जान पाया नादान?
विश्व-वीचियों में विचरण कर
पुलकित होजाता मन-म्लान।

जब उल्लास-भरे यौवन से
सागर में खेता पतवार।
विचलित हो मत हृदय दुखों में,
पलने दे दुख-सुख का प्यार।

'बढ़े चलो नाविक सागर में,
हृदय उमंगों में भर बोला।
विकल वात में सागर-तल पर,
नौका ने निज बन्धन खोला।

उल्लासों में उछलपड़ा मन,
छोड़दिया पीछे संसार।
विचलित हो मत हृदय, दुखों में
पलने दे दुख-सुख का प्यार।

—४—

मधु सीधी देहली आई और उसने जाकर अपने कमरे पर देखा कि सब सुनसान पड़ा था। बाईजी और उस्ताद कल्लन बगलवाली कुठरिया में खटिया पर बैठे थे। मधु को देखतेही दोनों प्रसन्नतासे उछलपड़े और बाईजी ने आगे बढ़कर मधु को प्यारसे अंकमें भरतेहुए कहा—"देखा तुमने उस्तादजी ! मेरा कहना सच हुआ न ! मेरी मधु मुझे छोड़कर नहीं जासकती। जिसे सबकुछ सिखलाकर मैंने इतनी बड़ी बनाया, क्या वह मुझे इस तरह छोड़कर चली जायगी।"

परन्तु उस्तादजी कुछ नहीं बोले। वह मौन थे। उन्हें दुःख था कि मधु ने अपनी नादानी से जमाजमाया कारोबार समाप्त करदिया। किसी काम को जमानेमें परिश्रम करना होता है और उसे बर्बाद करना चुटकियोंका काम है। इसबार उस्ताद कल्लनने जिस परिश्रमके साथ मधुकी दूकानदारी चमकाई थी इसपर उन्हें गर्व था, परन्तु मधुके चलेजाने ने उन्हें आसपासके उस्तादोंके बीच उपहासकी सामग्री बनादिया था। वह तो अपने मनसे निश्चय करचुके थे कि यदि अब मधु सोनेकी भी बनकर आयगी तो भी उसे वह वहाँ नहीं घुसने देंगे; परन्तु मधुको देखकर वह एक शब्द भी न बोलसके।

"उस्तादजी रूठे हैं।" मधुने मुस्कराकर पूछा।

"बिटिया ! तुमने उसदिन जाकर अपनी और अपने उस्तादजीका वर्षोंका परिश्रम खाकमें मिलादिया। ऐसे अवसर जीवनमें बारबार नहीं आते। राजासाहबके सामने उस्तादजीको बहुत लज्जित होना पड़ा।" बाई जी बोलीं।

"अवश्य लज्जित होनापड़ा होगा, परन्तु आप लोगोंको इस

प्रकार का कोई भी निश्चय मेरी अनुमति के बिना नहीं करनाचाहिए था। मैं अपनी कलाका सौदा करती हूँ, और सरेआम करती हूँ। इस दूकानदारीमें आप दोनों महाशय मेरे भागीदार हैं, बल्कि मान्य भी। मैं आपको मानती हूँ परन्तु अपने शरीर का सौदा करने का अधिकार तो मैंने आपलोगों को कभी नहीं दिया।" दृढ़तापूर्वक मधु ने कहा।

बाईजी और उस्तादजी मधुके यह शब्द सुनकर दंग रहगये। वह समझ ही न सके कि मधुके अन्दर यह क्या और कौन बोलरहा है। यह तो बेजबान मैना थी, जिसने कभी जबान हिलानी जानी ही नहीं। उस्तादजीका यह अपमान था कि उन्हीं के हाथ की खिलाईहुई छोकरी उनके सामने इस प्रकार ज़बान चलाए। मधुको उनके सम्मुख आकर अपनी भूलके लिए क्षमा-याचना करनी चाहिए थी।

"उस्तादजी नाराज़ हैं। मैं ठीक अनुभव कररही हूँ बाईजी! परन्तु अब इस नाराज़गीके सामने झुकजानेवाली यह मधु आपके सामने नहीं खड़ी है। मैं अब आपकी दूकान पर बिकने के लिए तय्यार नहीं हूँ। मुझे अपनी दूकान स्वयँ लगानी है। आप लोग यदि मेरे इस कार्य में सहयोग दें तो मेरे सिर आँखों पर।" इतना कहतीहुई मधु उस्तादजीके बिलकुल सामने आगई और उनकी ठोड़ी को स्नेह से छूतेहुए बोली, "क्या तय्यार हैं उस्तादजी?"

मधु के किसी भी प्रस्ताव के सम्मुख उस्तादजी ना नहीं कह सकते थे? मधु उस्तादजीको कौन जाने कितनी प्रिय थी। उनकी आँखोंका तारा थी। मधुको नृत्य सिखलाने में उन्होंने रात को रात और दिन को दिन नहीं गिना था। वास्तव में मधु उस्तादजीके जीवन का एक स्वप्न थी। मधु के रूप में वह अपनी उस्तादीकी छाप बड़े-बड़े कला-प्रेमियों के हृदयों पर डालना चाहते थे। दिल्लीके रसिक कला-प्रेमियों में मधुके नाम की धूम थी। यह सबकुछ देखकर उस्ताद जी गर्व से फूले नहीं समाते थे। उनकी तो इच्छाएँ मधुको और भी ऊँचा उठाने की थीं। वह तो चाहते थे मधुको बम्बई लेजाकर एक

बार सिनेमा के क्षेत्र में विश्वविख्यात बनादेना। मधुकी उन्नति ही उनके जीवन का स्वप्न था।

मधुने उस्तादजी के पैर छूकर क्षमा माँगी तो उस्तादजी के नेत्रों से आँसू उमड़ आये। उस्तादजी रोरहे थे और उन्होंने रोते-रोते मधु को प्यार से पुचकारकर अपने पास खटिया पर बिठलालिया। मधु ने आज स्वयँ अपने हाथ से उस्तादजीको चिलम भरकर पिलाई। फिर न जाने कहाँ-कहाँ की बातें हुईं और उस्तादजीने गर्व के साथ कहा, "चार दिन में यहाँ फिर वही रौनक होगी। उस्तादी के हाथ कहीं खो नहीं गये हैं मधु! इन हड्डियों में क्या-क्या हुनर भरेपड़े हैं, क्या यह तुमसे छुपा है?"

"मैं जानती हूँ उस्तादजी!" मधु ने सरस स्वर में कहा।

'मधु आगई, मधु आगई' दूसरे दिन यही शोर था बाजार भर में। दूसरे ही दिन उस्तादजीने कमरे की विशेष रूप से सफ़ाई कराके उसमें मसनद इत्यादि लगवादीं। साजिन्दों की पूरी टोली ने सुबह-ही-सुबह आकर उस्तादजीको सलाम झुकाई और मधुको देखकर तो इनका दिल बाग़-बाग़ होगया। उनकी आजीविका का साधन आगया। उन्होंने मन-ही-मन मधुको हज़ार बार दुवाएँ दीं और परमात्मासे उसके जीवन और यौवन की मनौतियाँ मानीं।

संध्या होते ही मधु बनठनकर अपने कमरे के बीचवाली मसनद पर आजमी और उसके दोनों ओर साजिन्दों के साज आकर रखेगये। उस्ताद कल्लनका तबला भी मखमली पोशाक में सुसज्जित सारङ्गी के पास रखा था। सम्पूर्ण आरचेस्ट्रा का स्वर एकबार कमरे में गूंजा तो मधुने नेत्र बन्द करलिए और उसकी बन्द पुतलियों में आजसे एक मास पूर्व का चित्र खिंच आया।

आज बाईजी ने मधु के मनाकरने पर भी स्वयँ अपने हाथसे मधु के पैरों में घुंघरू बाँधे। संध्याके डूबते हुए प्रकाश की अंतिम रेखाएँ अभी भली प्रकार विलीन-भी नहीं हुई थीं कि बिजलीकी दमदमाती

हुई बत्तियों से सारा कमरा प्रकाशमान होउठा। बूढ़े फूलवाले कोभी न जाने कहाँ से मधु के आनेकी सूचना मिलगई और वह भी अपने बेले चमेली के हार लेकर आँगन में आपहुँचा। बड़े तपाक से उसने मधु को सलाम किया और मधु ने भी बूढ़े मियाँ की कुशल पूछी।

एक ओर बाईजी ने पानों का चाँदीवाला थाल सोने के वर्क लगाकर रखदिया। और फिर क्या था? आनेजानेवालों का ताँता बँध गया। राजासाहब भी पधारे, नवाबसाहब भी, सेठजी भी, ठेकेदारसाहब भी, मैनेजर साहब भी और कवि तथा पत्रकार भी वहाँ उपस्थित थे। पहिले तो इतने दिन की अनुपस्थिति पर गिले-शिकवे होते रहे और फिर फ़रमाइश का अवसर आगया। कवि महोदय मधु के चलेजाने से अपनी कविताओं में कुछ-न-कुछ रूखेपन का अनुभव कर रहे थे और पत्रकार महोदय का तो कोई भी लेख लिखने में मन नहीं लगता था। मधु उनके साहित्य की प्रेरणा थी। ठेकेदार साहब का तो मधु के ध्यान में पिछला टैंडर ही खराब होगया, जिससें उन्हें केवल चार लाख का घाटा हुआ, परन्तु मधु के नाम पर यह सब-कुछ क़ुरबान था। मैनेजरसाहब तो एक दिन बरखास्त होते-होते बचे, नहीं तो उस दिन सेठजी को उन्हें निकाल ही देना था और सेठजी ने मैनेजरसाहब के सफेद झूठ का बड़े भावावेग में सिर हिलातेहुए अनुमोदन किया। अब रहे राजासाहब, सो उनकी तो दशा ही आज सँभली थी। उस दिन से जो बीमार पड़े कि आहों-ही-आहों में जलभुनकर ख़ाक हो गये। एक तो बेचारे पहिले ही पत्थर के कोयले-जैसे चमकदार थे और फिर बीमारी ने तो उस रङ्ग पर और भी आब चढ़ादी थी। भगवान् कृष्ण से उधार माँगा हुआ पक्का श्यामवर्ण था, जिसपर उन्हें बड़ा नाज़ था।

फूलमाला बेचनेवाले बूढ़े की मालाएँ हाथोंहाथ बिकगईं और वह सब इस समय मधु के गले में सुशोभित थीं; परन्तु मधु को उनमें महक न आसकी। फूल कागज के नहीं थे, परन्तु जिन हाथों ने उन्हें

पहिनाया था उनमें कुछ न जाने कैसा-सा लगा मधु को कि उसने तुरन्त ही उन मालाओं को उतारकर एक ओर रखदिया।

चहल-पहल कम नहीं थी और मधु भी उसमें अपनी सस्मित रेखाओं को मिलाने का सम्पूर्ण प्रयास कररही थी; परन्तु मधु का मन कुछ उदास-सा होता जारहा था। इसी समय कवि ने मधु के हृदय को टकठोंहते हुए कहा—"मधु! भूल-सी गई हो अपने पुराने साथियों को। परन्तु जीवन में पुराने ही काम आते हैं।

पत्रकार—"यह अनुभव की बात है मधु! पुराना पुराता ही होगा और नया-नया ही।"

मैनेजर—"अरे क्या कहते हो जी! क्या मधु नहीं जानती हैं इन बातों को? बाजार में एक-से-एक सुन्दर दूकान सजी है, परन्तु जो आनन्द यहाँ आकर आता है वह भला और कहीं उपलब्ध होसकता है?"

सेठजी—"खूब कहा भय्या मैनेजर! खूब कहा तुमने। बात की बस जान निकालकर रखदी। यही तो कहते-कहते मधु से हमारे बाल पक गये, परन्तु यह तो डाल के पंछी ठहरे, आज यहाँ कल वहाँ।"

बाईजी और उस्ताद कल्लन आज बहुत प्रसन्न थे। यही बातें जो मधु के हृदय में उभार लादेती थीं और उसके पैर नृत्य के लिए फड़कने लगते थे, आज उसके हृदय में जलन पैदा कररही थीं। वह अन्दर-ही-अन्दर जलभुनकर राख होरही थी परन्तु ऊपर से मुस्कराने की उसने कला सीखी थी। मुस्कराती रही, कोई कुछ भी कहे, वह मुस्कराती थी और कहनेवाला समझता था कि मधु उसकी बात का उत्तर देरही है।

आज मधु को इतने दिन पश्चात् देखकर सभी के प्यासे नयन उसके यौवन-मधु को अपने अन्दर उतारते-उतारते नहीं थकरहे थे। जब किसी के मुख से एक शब्द भी न निकला तो अन्त में राजासाहब ने ही नृत्य की फरमाइश की। मधु राजासाहब से अन्दर-ही-अन्दर चिढ़ती थी। वह उन्हें घृणा करती थी, परन्तु यह तो कला का मन्दिर

था, इसमें प्रवेश करनेसे किसी को रोका नहीं जासकता। किसीको रोकना मधु के सिद्धान्त के विरुद्ध भी था।

मुजरा वह नित्य करती थी परन्तु कभी किसी से कुछ याचना करना उसने नहीं सीखा था। याचना किये बिना ही यहाँ रुपयों की वर्षा होती थी और रुपयों की वर्षा आजभी हुई, पहिले से कहीं अधिक, परन्तु मधु ने एक भी पैसे को हाथ से नहीं छुआ। बाईजी ने सबको बटोरकर उस्ताद कल्लन की पगड़ी में भरदिया।

नृत्य समाप्त होने के पश्चात् मधु अपने कमरे में चली गई। उसके नेत्रों से आँसुओं की धारा बहरही थी। हृदय ने उसे बार-बार धिक्कारा कि पगली! अच्छी खासी एकबार इस नर्क से बाहर निकलगई थी। यदि चाहती तो राजन के साथ वहीं एकान्त प्रकृति की गोद में रहकर गंगा-माता के तीर पर जीवन व्यतीत करदेती। राजन इतना संकीर्ण हृदय वाला व्यक्ति नहीं था कि वह मधु को वेश्या के रूप में देखकर घृणा करने लगता और यदि करता भी तो क्या उसे अपनी अङ्क में सुलाने के लिए वहाँ गंगा-माता नहीं थी? उसे वहाँ से लौटकर नहीं आनाचाहिए था।

मधु ने गंगा की 'आगे बढ़ो' वाली पुकार को नहीं सुना।

इसी समय बाईजी रुपयों की एक मोटी गड्डी लेकर कमरे में घुसती हुई बोलीं—"बेटी मधु! आज तो मेरी लाड़ली पर रुपया बरसा है, बरसा।" और यह कहतेहुए उसने गड्डी मधु की ओर बढ़ादी।

मधु ने बनावटी मुस्कान मुखपर लातेहुए हृदय की वेदना को छुपाकर कहा—"मुझे क्या करना है इनका। रुपयों के भूखे उस्तादजी को देदो न! और कहदो कि आज का सारा रुपया साजिन्दों को बाँट दें। बेचारे इतने दिन से बेकार फिररहे थे।"

बाई जी—"सबका सब!"

मधु—"और नहीं तो क्या? अपनी मधु के लौट आने की प्रसन्नता में क्या इतना भी नहीं करेंगे उस्तादजी?"

और उस्तादजी ने सचमुच ही सब रुपये साजिन्दों में मधु की ओरसे बाँटदिये। साजिन्दे मधु का गुणगान करतेहुए अपने-अपने घर चले गये। रात्रि को मधु ने कुछ नहीं खाया।

इसबार यहाँ से जाने से पूर्व बाईजी तथा मधु दोनों एकही कमरे में सोते थे, परन्तु आज मधु ने स्पष्ट कहदिया कि वह अपने कमरे में अकेली ही रहेगी और उसके एकान्त समय में कोई भी व्यक्ति वहाँ नहीं आसकेगा। साथ ही उसने उस्तादजी से यहभी स्पष्ट कर दिया कि अपनी मुलाकातों के विषय में वह स्वयँ निर्णय ही करेगी। जिसकिसी से वह बातें करना पसंद करेगी, करेगी, अन्यथा नहीं। रुपये के लालच में आकर वह किसी को निमन्त्रित न करें। केवल संध्या का मुजरा सबके लिए खुलारहेगा और उसमें भाग लेने का सबको अधिकार होगा।

उस्ताद कल्लन ने मधु की यह बात स्वीकार करली और मधु की प्रसन्नता में ही अपनी प्रसन्नता समझकर आज खूब मस्ती की छानी। बाईजी और उस्ताद कल्लन रात्रि को सब साजिन्दों को बिदा करके मधु के सोने का प्रबन्ध करने के पश्चात् गर्व के साथ घूमने निकले और अपने इधर-उधर के साथियों के पास आजकी भरीपुरी मजलिस की सूचना देने निकल गये। उस्ताद की मूँछों पर ताव था और बाईजी में आज फिर नया यौवन झाँक रहा था।

मधु रातभर न सोसकी। अपने कमरे में अकेली पलङ्ग पर पड़ी इधर-उधर करवटें बदलती रही। मन में सोचा क्या 'जीवन भर उसे यही नाटक करते हुए एक दिन इस संसार से उठजाना होगा? क्या सचमुच उसके जीवन में कभी फिर वास्तविकता न झाँक सकेगी? क्या वह आज नारी नहीं रही? और यदि है तो क्यों समाज में वह सम्मान नहीं पासकती? मन ने कहा कि वह वीर नारी नहीं है। उसने परिस्थितियों के सम्मुख झुककर अपने नारित्व को बेच दिया। परन्तु बेचना तो कोई पाप नहीं। जो कुछ उसके पास था उसेही तो

वह अपने प्राणों की रक्षा के लिए बेचसकती थी। उसने चोरी नहीं की। अपना कुछ बेचा है। उसके लिए फिर वह क्यों अपमानित समझी जाती है? मधु कुछ न समझसकी। सोचते-सोचते उसका मस्तिष्क चकरा गया। वह कुछ भी निर्णय न कर सकी।'

सुबह वह देर से उठीतो उसका शरीर अस्वस्थ था। उसे बुखार-सा था। बाईजी ने उस्ताद को बुलाकर दिखलाया। डाक्टर आया और उसने देखकर मस्तिष्क की थकान को रोग का कारण बतलाया। नींद आने पर यह स्वस्थ हो जायँगी। डाक्टर ने सोने की दवा देदी और वास्तव में नींद के पश्चात् जब लगभग बारह बजे मधु उठी तो वह काफी स्वस्थ थी। मधु ने पलङ्ग पर बैठे-बैठे ही चाय पी और फिर वह पलङ्ग से उतरकर कमरे में टहलनेलगी।

मधु जिस समय से यहाँ आई थी राजन ने उसकी विचारधारा को एक क्षण के लिए भी न छोड़ा; ध्यान बराबर राजन में ही अटका हुआ था। प्रातःकाल घूमने जाना, वहाँ से आकर कुटिया तथा बाहर चबूतरे पर झाड़ू लगाना, फूलपौदों को पानी देना और फिर राजन के साथ वृक्षों की सघन छाया में घूमना। संध्या को मन्दिर के सामने नृत्य करना, संगीत सुनना और रात्रि में चन्द्रमा की छटा का अलौकिक आनन्द प्राप्त करना। वह राजन का राज्य था जिसकी दुलहिन दिल्ली की अट्टालिका में आज विराजमान थी। राजन भी अकेला और वह भी अकेली, उधर भी पीड़ा और इधर भी पीड़ा। मधु ने इधर कुछ गुन-गुनाना भी सीख लिया था। गाना वह पहिले भी अच्छा खासा जानती थी। कमरे के द्वार बन्द करके वह पलङ्ग पर लेटकर पीड़ा-भरे स्वर में गुनगुना उठीः—

प्राण! इस जग को न होगा
प्रिय, मिलन मेरा तुम्हारा।

विरह कण-कण में भरा है,
आह से मेरी मुदित जग;
कररही परिहास मेरा
नवल सस्मित विश्व-जग-मग ।

हँसरहा मेरी पराजय पर
गगन-प्रत्येक - तारा।
प्राण ! इस जग को न होगा
प्रिय, मिलन मेरा तुम्हारा ।

विरह में तेरे भटकती
है विरह की भावना भी,
विश्व–लहरों में ढुलकती
लालसा प्रिय पावना भी,

नीर बन–बन बहरहा है
स्नेह, नयनों का दुलारा।
प्राण ! इस जग को न होगा
प्रिय, मिलन मेरा तुम्हारा ।

निज विजय की लालसा है
आज भी संसृति-विजय में,
एक पल तो ठहर पाओ
नियति के नश्वर निलय में,

चरण - कमलों में चढ़ालूँ
मैं मिलन की अश्रु-धारा ।
प्राण ! इस जग को न होगा
प्रिय, मिलन मेरा तुम्हारा ।

और ही सन्सार होगा,
नियति के बन्धन न होंगे,
मुक्त हम तुम प्राण-से
गाते मिलन-मृदु-गीत होंगे ।

चकित होकर नभ विलोकेगा
प्रणय-परिणाम—प्यारा ।
प्राण ! इस जग को न होगा,
प्रिय, मिलन मेरा तुम्हारा ।

—५—

राजन ने मधु को विदा करदिया और एक बार फिर अपनी उसी पुरानी मस्ती और लापरवाही को जीवन में लाने का प्रयास किया, परन्तु वह न आसकी। राजन को उसमें सफलता न मिली। मधु की स्मृति को ज्यों-ज्यों उसने भुलाने का प्रयत्न किया त्यों-त्यों वह और भी निखरे रूप से उसके जीवन में खिलउठी। अपना यह प्रयास असफल होते देख राजन ने अपना कार्यक्रमही बदलदिया। यह एकान्त मन्दिर और झोंपड़ी का निवास त्यागकर वह आस-पास के देहातों में निकलगया। देहात के रहनेवालों के जीवन में उसने घुसने का प्रयास किया और उनकी समस्याओं को अपनी समस्या मानकर उन्हें सुलझाने में जुट-गया। यह कार्य भी राजन ने मधु को भुलाने के लिए ही किया, परन्तु इसमें भी उसे सफलता न मिली। मधु हरसमय उसके साथ रहती थी। उसकी स्मृति राजन के श्वासों में समागई थी, उसके जीवन में बस-गई थी, उसका स्वप्न बनगई थी, नेत्रों की पुतलियों में हरसमय बसने वाली मोहक प्रतिमा।

मधु की यह स्मृति राजन को जीवन में भटकानेवाली नहीं थी, बल्कि जीवन के प्रत्येक कठिन क्षण में सहारा प्रदान करनेवाली थी, बल देनेवाली थी। जब राजन हारकर थककर किसी पत्थर पर बैठ जाता था और यह अनुभव करता था कि वह अकेला है, उसका कोई साथी नहीं, तो मधु उसके सामने आकर खड़ी होजाती थी और उसे विश्वास दिलाकर कहती थी, 'राजन ऐसा कभी न समझना। मैं तुम्हारे साथ हूँ। योग्य अवश्य नहीं हूँ तुम्हारे परन्तु अनुचरी तो बनसकती हूँ। चाहती थी सहचरी बनना, परन्तु मेरे गत जीवन का पतन मेरे मार्ग में बाधक है। मैं अपनी गिरावट को तुम्हारे जीवन की गिरावट में नहीं

बदलना चाहती। तुम आज पूज्यनीय हो, कल लोग तुमसे घृणा करने लगें, तुम्हें अपने पास बिठलाने में भी उन्हें संकोच हो, तुम्हारा सामाजिक सम्मान तुमसे छिनजाय, तुम्हारा धार्मिक स्तर बदलजाय—यह सब किस लिए ? क्योंकि तुम मधु को प्रेम करते हो, इसलिए, यह मैं सहन नहीं कर सकती।'

राजन तिलमिला उठता था इस भावना के मनमें आतेही। वह नहीं समझपाया कि मधु के हृदय में ऐसी आत्मग्लानि क्यों है ? वह बारबार प्रण करता था कि जीवन में एकबार वह मधु को प्राप्त करने का अवश्य प्रयास करेगा, परन्तु उसका यह प्रयास साधारण प्रयास नहीं होगा। इस प्रयास में या तो वह मधु को अपने साथ लेआयगा, अन्यथा फिर वह इधर लौटकर नहीं आयगा।

संध्या-समय मन्दिर के सामने उसी चबूतरे पर बैठकर वह आज भी पूजा करता था, परन्तु मधु के पैरों में रुन-झुन रुन-झुन बजने वाले घुँघरुओं की ध्वनि अब उसके कानों में रस का संचार नहीं करती थी। जब वह आत्मविस्मृति के साथ संगीत में तल्लीन होजाता था तो उसके कानों में घुँघरुओं की ध्वनि प्रतिध्वनि होउठती थी और उसका संगीत बन्द हो जाता था। वह जोर से चिल्लाउठता था 'मधु' परन्तु मधु को वहाँ नहीं पाता था।

राजन के प्रेमी भक्तजन आकर कभी-कभी उसे घेरलेते थे और पूछते थे, "राजन मधु कहाँ चली गई ? उसे तुम लेआओ न ! हम लोगों को तुम्हारी वह जोड़ी बहुत अच्छी लगती थी। मधु के आनेसे हमारे आसपास के देहात में एक नई ताज़गी आगई थी।"

दूसरा—"यह वन मुस्कराने लगा था मधु के यहाँ रहने से राजन ! तुमने आखिर उसे जानेही क्यों दिया ? हम लोगों से कहते तो हमही उसकी मिन्नत-समाजत करके उसे रोकलेते।"

तीसरा—"हम मधु को रूठकर नहीं जानेदेते राजन !"

राजन—"वह रूठकर नहीं गई है बावलो ! बस चली गई है।

मैं उसे रोक नहीं सकता था। बिना बुलाये आई थी, बिना कहे जारही थी। मैंने कहा—कहकर जाओ मधु! और वह न जासकी, लौट आई। परन्तु उसे जाना अवश्य था। वह न जाती तो अस्वस्थ होजाती।"

एक—"अस्वस्थ क्यों हो जाती राजन?" उत्सुकता से पूछा।

राजन—"यह मैं स्वयँ नहीं जानता। उसके मनमें कोई चोर था, जिसे वह हरसमय मुझसे छुपाये रहती थी। वह चोर वह मुझपर स्पष्ट करते हुए डरती थी। कुछ भयभीत-सी रहती थी, चौकन्नी-सी। कहीं कोई राज खुल न जाय। उसने राजन को नहीं समझपाया और इसी लिए वह राजन को एकबार अपनाकर भी छोड़कर चलीगई। एक पीड़ा देगई बावली। व्यर्थ के लिए यहाँ आकर चन्द दिन का सहारा बनी और फिर अपनेको न सम्भालसकी। बस चली गई।"

कभी-कभी घण्टों तक मन्दिर में राजन देवी के सामने सिर झुकाये खड़ारहता था और एक शब्द भी मुख से नहीं बोलता था, परन्तु वह आजकल दिन-प्रतिदिन दूसरों की सेवा में अनुरक्त होता जारहा था। एकही स्थान पर बना रहना अब उसे सुखकर नहीं था और न उसका वहाँ मन ही लगता था। कभी एक गाँव में और कभी दूसरे गाँव में। गाँव भर के रोगियों के पास एक बार दिन में चक्कर लगाआना मानो उसका नियम था। उनकी दवा-दारू का सब भार वह अपने ऊपर ले लेता था और जब वह उस गाँव को छोड़कर दूसरे गाँव में जाता था तो उस गाँव के आदमी भीगी पलकों से उसे बिदा करते थे। अपने यहाँ फिर बार-बार आने का निमन्त्रण देते थे और उसकी मानवता के सम्मुख खुले हृदय से नत-मस्तक होजाते थे।

किसी भी गाँव में जाकर वहाँ के रोगियों की सेवा करने के पश्चात् जब राजन को समय मिलता था तो वह दूर जंगल के किसी एकान्त कोने में निकलजाता था और किसी वृक्ष के नीचे बैठकर घण्टों तक गाता रहता था।

हँस हृदय पागल ! अरे हँस
तू, उन्हें अधिकार है ।
वेदना दी, क्या हुआ ?
यहतो प्रिया का प्यार है ।

जग अलग मुझसे, अलग
जग से नियति के मैं बना हूँ,
विकल-उर क्यों बिलखता है ?
मैं अलग जग से गिना हूँ

उस विधात्री ने विभव की;
बस यही तो प्यार है ।
हँस हृदय पागल ! अरे हँस
तू, उन्हें अधिकार है ।
वेदना दी, क्या हुआ ?
यहतो प्रिया का प्यार है ।

भाग्य मेरा है निराला,
वेदना में दीं उमंगें ।
पूर्व-परिचित चेतना में
चाह की नव-नव तरंगें

देखता हूं प्रति-प्रहर मैं;
जलरहा संसार है ।
हँस हृदय पागल ! अरे हँस
तू, उन्हें अधिकार है ।
वेदना दी, क्या हुआ ?
यह तो प्रिया का प्यार है ।

प्यार उस निर्मम हृदय में,
क्लान्ति में है शान्त जीवन,
मुख-मलिन-अवसन्नता में
छुपरही है लाज-चितवन,

स्वर्ण-आभा है तिमिर में
मूक उर-उद्गार है।
हँस हृदय पागल! अरे हँस
तू, उन्हें अधिकार है।
वेदना दी, क्या हुआ?
यहतो प्रिया का प्यार है।

रीझता जग, जानती है
खूब तू जग को रिझाना,
स्वप्न की सूनी निशा के
तिमिर में जग को फँसाना,

विश्व का विस्मय बनाना;
बनरहा संसार है।
हँस हृदय पागल! अरे हँस
तू, उन्हें अधिकार है।
वेदना दी, क्या हुआ?
यह तो प्रिया का प्यार है।

जीवन चलरहा था किसी प्रकार कर्तव्य के सहारे, परन्तु बिलकुल नीरस, उत्साह-विहीन, उन्मना-सा। राजन को सब प्रेम करते थे और राजन सभी के काम आता था, परन्तु इधर कितने ही दिन से राजन को किसी ने हँसतेहुए नहीं देखा था। मधु क्या गई, मानो उसकी मुस्कान

ही छीन कर लेगई। राजन के जीवन में बल अवश्य था परन्तु न तो वह पहिले जैसी मस्ती ही थी और न चहल-पहल ही। एक मशीन की भाँति वह काम करता चलाजाता था।

एक दिन एक रोगी ने राजन का हाथ दवाई की शीशी आगे बढ़ाने के लिए थामते हुए कहा—"राजन! मेरी खटिया के पास बैठ जाओ।"

राजन बैठ गया।

उस वृद्ध ने राजन के नेत्रों में झाँकते हुए कहा—"राजन! मुझे दवा पिलाना व्यर्थ है। मैं अब जीवित नहीं होसकता।"

राजन—"ऐसा न कहो पंडित! मैं विश्वास करता हूँ कि तुम स्वस्थ होजाओगे।"

इसपर वृद्ध पंडित मुस्कराया और मुस्कराकर राजन के हाथ पर हाथ फेरताहुआ बोला—"राजन! तुमने बहुत अच्छा किया।"

राजन की कुछ समझ में न आया। उसने क्या अच्छा किया, वह यह भी न समझ सका। इसी समय पंडित फिर बहुत धीमे स्वर में गम्भीरतापूर्वक बोला, "तुम पतन के गर्त में गिरते-गिरते बच गये। नारी का यौवन बहुत बुरा गढ़ा है राजन! उससे बचकर निकल भागना बड़े साहस का काम है।"

राजन "अब कुछ समझा और वह तनिक सतर्क होताहुआ बोला परन्तु उससे मैंने तो निकलभागने का प्रयास नहीं किया पंडित। मधु तो मुझे स्वयँ ही छोड़कर चली गई।"

पंडित—"उसने बहुत अच्छा किया राजन! एक ब्राह्मण-पुत्र के धर्म की रक्षा की उसने। एक पतिता होकर उसने धर्म की रक्षा की। मैं उसकी सराहना करता हूँ।"

राजन मधु के लिए 'पतिता' शब्द का प्रयोग सुनकर तिलमिला उठा। तनिक सतर्क होकर व्यंग्यपूर्ण स्वर में बोला, "और उस धर्म की रक्षा की, जिसने उसे पतिता घोषित किया। परन्तु पंडित

तुमने उसे पतिता क्यों कहा ? क्या मैं यह भी जानसकूंगा ?"

पंडित—"पतिता ! तुम क्या जानो राजन ! तुम तो भोलेभाले ब्राह्मण-पुत्र हो।" पंडित राजन के व्यंग्य को न समझताहुआ गम्भीरता-पूर्वक बोला, "मधु हमारे इसी गाँव के पास की छोकरी है। बचपन के बाद जब उसमें यौवन फूटा तो मधु में निखार आगया। कुछ दिल्ली के लोग यहाँ आये और उन्होंने ८००) में मधु का सौदा कर लिया। मधु रोई, चिल्लाई, परन्तु उसके पिता ने विवाह का साज सजाकर उसे उन लोगों के हवाले करदिया। आसपास के लोग उसके पास दिल्ली जाते हैं तो कहते हैं कि उसका बड़ा ठाटबाट है वहाँपर। वह वेश्या बनगई है राजन ! वेश्या।"

राजन—"मधु वेश्या बनगई है ! मधु वेश्या है !"

पंडित—"फिर नहीं तो तुम उसे क्या समझे थे ?"

राजन—"परन्तु इसमें उसका क्या दोष है ?"

पंडित—"दोष ! दोष क्या होता है ? एक पेड़ा यदि नाली में गिरपड़े तो इसमें पेड़े का क्या दोष है ? परन्तु वह पेड़ा खाया नहीं जासकता। मधु का पतन होचुका। तुमने उसका नृत्य मन्दिर की देवी के सम्मुख कराया, इसे हम पाप नहीं मानते; क्योंकि देवी और देवता के लिए सब शुद्ध है; परन्तु......"

राजन और कुछ न सुन सका। उसके कान बहरे होगये। वह उठकर बाहर चलागया। राजन द्वार से बाहर निकलकर कहीं भाग जाना चाहता था कि पंडितजी की लड़की शीला राजन के सामने आकर खड़ी होगई और विनम्र भाव से बोली, "आप कहीं जारहे हैं ?"

"हाँ तनिक जारहा था शीला !" राजन ने उसी प्रकार गर्दन नीची कियेहुए उत्तर दिया।

"पिताजी की तबियत कैसी है ?" शीला के नेत्र डबडबारहे थे।

"रोरही हो शीला ! चिंता न करो। भगवान् अच्छा करदेंगे तुम्हारे पिताजी को।" कुछ निकट आतेहुए राजन ने कहा।

"राजन ! पिताजी को किसीप्रकार इसबार बचालो। मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूं राजन ! वरना मेरा इस संसार में कोई नहीं है।" और शीला की आँखों से आँसुओं की धारा बहनिकली।

राजन मौन, जड़वत होगया। उसके पैरों को मानों मेख़ लगाकर किसी ने जमीन में गाड़दिया। उसे पता था कि पंडित की दशा बहुत खराब है, वह चंद घन्टों का महमान है। राजन उसकी सेवा में पुत्र के समान आज एक सप्ताह से जुटाहुआ था और निःस्वार्थ भाव से सेवा कररहा था, परन्तु अभी-अभी मानो यकायक उसे पंडित से घृणा हो गई। पंडित ने मधु के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया वह राजन के हृदय पर तलवार की पैनी धार की तरह एक लम्बी लकीर खींचते चले गये। उन शब्दों ने राजन की भावना पर प्रहार किया। उसने राजन की दबीहुई मौन पीड़ा को जगादिया। उसकी वेदना को झंकृत कर दिया।

शीला सामने खड़ी थी और उसकी अबोध आँखों से आँसुओं की धारा बहरही थी। राजन ने शीला की ओर देखा और वह उसीसमय उलटा लौट लिया। घर के अन्दर घुसा तो पंडित के श्वाँस लम्बे पड़ चुके थे, उसकी नासिका तिरछी होगई थी और मुर्दनी के आसार चेहरे पर छागये थे। राजन समझगया कि पंडित गया; परन्तु वह उसे जाने से रोक भी तो नहीं सकता था। पंडित के नेत्र एक बार फिर खुले। उसने ललचाई दृष्टि से मानो राजन से कुछ भीख माँगी परन्तु वह बोल न सका। शीला भी वहीं आगई थी। पंडित ने शीला की ओर देखकर हाथ उठाने का प्रयास किया, परन्तु हाथ न उठ सका। वह कुछ कहना चाहता था, कह न सका।

एक आंधी का तेज़ झोंका आया और घर के द्वार तीव्र वेग के साथ आपस में टकरा गये। पंडित अब नहीं था इस संसार में।

राजन की स्वच्छंदता को मानो पंडित ने मरकर जड़ करदिया, एक बंधन बाँध दिया उसके पैरों में। आज दस दिन पश्चात् जब

वह चलने के लिए उद्यत हुआ तो शीला ने पास आकर राजन के कंधे पर की धोती पकड़ेहुए कहा, "आप जारहे हैं ?"

राजन—"हाँ जारहा हूँ शीला ! परन्तु तुम किसी प्रकार की चिंता न करो। मैं तो इधर देहात में आता ही रहूँगा। आगामी सप्ताह में फिर इधर आऊंगा।"

शीला रोरही थी, वह बोल न सकी, एक शब्द भी।

"तुम रोरही हो शीला !" राजन ने निकट आकर कहा।

"और रोने के अतिरिक्त काम ही क्या रहगया है। पिताजी छोड़कर चलबसे। आप थे, सो अब आपभी जारहे हैं।" इतना कहकर शीला मौन होगई, परन्तु उसने ऐसी दृष्टि से राजन के मुख पर देखा कि मानो वह कहना कुछ और भी चाहती थी।

"मैं अभी और रुकजाता शीला ! परन्तु मुझे मन्दिर में गये आज बारह दिन होगये। एक छोटा-सा बगीचा वहाँ लगायाहुआ है। वह सब-का-सब कुम्हलागया होगा, झुलस जायगा सब।" राजन ने कहा।

"बगीचा !" एक लम्बी साँस लेकर शीला ने कहा। "जाइए ! आप अपना बगीचा सँभालिए ! परन्तु झुलसते को कौन बचा सकता है। जिसे विधाता ने पैदा ही झुलसने के लिए किया है उसे हरा-भरा करना किसकी सामर्थ में है ?" और इतना कहकर शीला पृथ्वी पर बैठगई।

राजन के बढ़ते हुए पैर रुकगये। वह लौटकर फिर शीला के पास आकर बोला, "शीला ! एक बात होसकती है। चलो, तुम भी मेरे साथ-साथ क्यों न चलो ? यदि तुम्हें ऐतराज न हो तो दो-चार दिन वहीं रहलेना। वहाँ भी ऐसा ही है; एकान्त, चारों ओर दूर-दूर तक।"

"सच !" शीला ने कहा।

"सच की क्या बात है शीला ! मेरा भी मन बदल जायगा। विधाता

ने मैं देखता हूँ कि जब मनुष्य को बनाया था तो पीड़ाको उससे पहिले ही जन्म देकर संसार में भेज दिया था। तुम्हें अपने पिताजी की मृत्यु का दुःख है और एक मैं हूँ जो बिना दुःख के ही पागल बना फिररहा हूँ।"

"बड़ी विचित्र बात है।" शीला ने झटपट चलने के लिए अपनी गाँठ-पुटलिया बाँधते हुए कहा।

"तो क्या तुम सचमुच तय्यार हो चलने के लिए शीला !" शीला के भोले मुख पर दृष्टि डालकर राजन ने पूछा।

"तब क्या आप मेरी परीक्षा लेरहे थे ?" शीला ने उत्सुकता से प्रश्न किया।

"तुम्हारी परीक्षा लेने का मुझे अधिकार नहीं है शीला ! मैं तो जीवन में अपनी ही परीक्षा देने चला हूँ।। देखता हूं उत्तीर्ण होता हूँ या नहीं। मैं एक आवारा किस्म का आदमी हूँ। इतनी सेवा तुम्हारे पिताजी की न जाने किस धुन में आकर करगया। वरना मैं तो ऐसा इन्सान हूँ कि मेरे पास मुर्दा भी पड़ारहे और मैं उफ़ तक न करूं।" नेत्रों की दृष्टि बदलते हुए राजन ने कहा।

"कोई चिंता नहीं राजन ! ऐसे आदमी भी दुनियाँ में बहुत कम मिलते हैं। और जो वस्तु बहुत कम होती है वह मूल्यवान अवश्य होती है; यह एक दिन पिताजी ने मुझे बतलाया था।" शीला सरलतापूर्वक बोली।

"परन्तु मूल्यवान तो विष भी होसकता है !" राजन ने कहा।

"विष भी प्रेम में मधु हो जाता है राजन !" शीला बोली।

"मधु ! हाँ, मधु विष है। परन्तु राजन ने तो विष-पान का प्रण करलिया है शीला ! जीवन में प्रेमांकुर को जमते ही कुचलदेना चाहिए और यदि उसे पाला है तो अपना सर्वस्व उसके अर्पण कर देना चाहिए। इसलिए जीवन की आज प्रथम भेंटमें ही मैं तुम्हें स्पष्ट करदेना चाहता हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करने का प्रयत्न न करना। मुझसे सेवा भले ही चाहे जो करालेना पन्तु प्रेमका नाट्य रचने

का प्रयास न करना। ऐसा करके तुम न केवल अपना ही अहित करोगी वरन् मेरा और........" राजन मौन हो गया।

शीला चुपचाप यह सबकुछ सुनकर भी राजन के साथ चलदी और संध्या होते-होते दोनों पगडंडी से चलकर मंदिर में पहुँच गये। वहाँ चारों ओर गर्द छाया हुआ था। चबूतरे पर रेत बिछा था और बगीचे के पौदे कुम्हला गये थे। चम्पा, चमेली, जूही इन तीन पौदों को मधु ने अपने हाथ से लगाया था। राजन ने पहिले इन्हें ही पानी दिया और इनके पश्चात् उसने अन्य पौदों की देखभाल की।

राजन के आने की सूचना चारोंओर फैलगई। शीला कुटिया में बैठी थी। जोकोई भी आता था वह कुटिया में झाँककर जाता था, परन्तु वहाँ मधु को न पाकर निराश होकर राजन से पूछता था, "मधु रानी नहीं हैं यह राजन !"

"हाँ वह नहीं है, भय्या !"

फिर दूसरा प्रश्न कोई नहीं करता था। आसपास के भक्तजनों ने लग-लिपट कर बात-की-बात में चबूतरा साफ कर दिया और आनेवालों का ताँता बँधगया। शीला ने बाहर निकलकर देखा तो वहाँ एक अच्छा-खासा समाज जुटा था। सभी लोग बड़े प्रेम-भाव से आते थे और राजन को प्रणाम करते थे। राजन उन्हें प्रणाम करके मान के साथ बिठलाता था।

आज राजन ने तेरह दिन पश्चात् यहाँ आकर अपना संगीत-स्वर छेड़ा और सब मंत्रमुग्ध हो गये। शीला ने ऐसा मधुर संगीत कभी नहीं सुना था। उसे यह पता भी नहीं था कि राजन ऐसा सुरीला कंठ लेकर संसार में आया है।

जब सब चलेगये तो शीला ने एकान्त में राजन के पास आकर उससे सटकर बैठने का प्रयास करते हुए कहा, "आप इतना मधुर गाते हैं, क्या स्वप्न में भी कभी मैं अनुमान करपाई थी इसका ?"

राजन उठकर कुटिया से बाहर आगया और उसने शीला की बात

का कोई उत्तर नहीं दिया । शीला भी बाहर निकलआई । चाँदनी श्वेत पक्षियों के परों के समान ऊपर से बिखर रही थी और वृक्षों की कोटरों में से छन-छनकर कहीं-कहीं पर भूमि को भी श्वेत बना दिया था। पिघली हुई चाँदी के स्रोत के समान पास में गंगाजी बहरही थीं और उनका कल-कल स्वर कानों में अमृत का संचार कररहा था।

कितनी सुहावनी थी यह रात, परन्तु राजन मौन था । शीला भी पास मौन खड़ी थी। शीला ने राजन का हाथ अपने हाथ में लेकर कहा, "राजन ! मुझे आज प्रतीत हुआ है कि प्रकृति में भी यौवन का विकास उसीप्रकार विकसित होता है कि जिसप्रकार स्त्री के बदन में । यहाँ की प्रत्येक वस्तु कितनी सुहावनी है। भगवान् जिसपर प्रसन्न होते हैं उसे ऐसे ही स्थान पर जन्म देते हैं और जिसपर रुष्ट होते हैं उसके आस-पास के जंगलों को भी आग लगाकर झुलसाडालते हैं।"

राजन ने इस बातका भी कोई उत्तर नहीं दिया।

"आप मेरी बातों में रस नहीं लेसकते यह मैं जानती हूं, परन्तु रस न लेना भी तो मनुष्य की कमजोरी है राजन !" शीला ने चमत्कृत नेत्रों से राजन के मुखपर तीखी दृष्टि से देखकर कहा।

और राजन ने अनुभव किया कि वास्तव में शीला सत्य कहरही है। जीवन के प्रति उदासीन होजाना जीवन की सफलता नहीं, बल नहीं । राजन शीला के दोनों हाथ अपने हाथों में लेकर गम्भीरतापूर्वक बोला, "शीला ! तुम सच कहरही हो, परन्तु यह सिद्धान्त की बातें कर्म-क्षेत्र में आकर न जाने कहाँ भटकती रहजाती हैं, इसका कुछ पता ही नहीं।"

"हृदय का दुःख धीरे-धीरे हलका होताजाता है, गुबार कम होजाता है और तूफान दब जाता है ।" गम्भीरतापूर्वक शीला ने कहा।

"तुमने सच कहा शीला, परन्तु यहाँ इस किस्म की कोई बात नहीं। मुझे भय है कि जो तुम चाहती हो वह नहीं होसकेगा। इसलिए तुम वह प्रयत्न ही न करो कि जिसे सफलता प्राप्त करने के लिए संघर्ष करना पड़े और फिर संघर्ष भी उससे, जिसे अपना बनाना है। विजय से

प्राप्त कीहुई वस्तु में प्रेम नहीं होता शीला ! मैं तुम्हारी सेवा करने को तय्यार हूं, फिर दुहराता हूं; परन्तु यह प्रयास छोड़ दो।"

शीला प्रयास न छोड़ सकी और राजन भी अपने हृदय के संघर्षों से लड़ता-झगड़ता किसी प्रकार आज से कल और कल से परसों को उधार माँगता हुआ जीवन में बढ़चला। शीला के प्रति वह कठोर नहीं हो सकता था क्योंकि किसी भी ऐसे व्यक्ति के प्रति जो अपना सबकुछ समर्पण कररहा हो, माँगता कुछ न हो, कठोर हुआ भी कैसे जासकता था ? शीला ने मधु के लगाए हुए पौधों को सींचना और संध्या-समय कुटिया के सामनेवाले चबूतरे को साफ़ करनेका काम अपने ऊपर लेलिया। काम सब वही था जो मधु करती थी, परन्तु राजन उसमें रस नहीं ले पाता था।

शीला के यौवन का विकास मधु से कम नहीं था, बल्कि उभार कहीं और अधिक था। वर्ण भी मधु से गोरा और चाञ्चल्य में तो मधु को वह एक ओर उठाकर रखदेती थी। राजन कितना भी उदास क्यों न हो उसे एक बार मुस्कराने और फिर हँसने पर राजी करलेना उसके लिए साधारण-सी बात थी। जब वह एकान्त में झूम-झूम कर मस्ती के साथ कुटिया के सामने घूमती थी तो राजन का मन आन्दोलित हो उठता था; वह उठकर बाहर आता था, शीला के यौवन को निहारता था और फिर नेत्र बन्द करके कुटिया के अन्दर चला जाता था।

वह अपने अन्दर एक भूख-सी अनुभव करता था परन्तु मन को किसी प्रकार मसोसकर रहजाता था। जब वह उधर को लपकता था तो मधु की प्रतिमा उसके सम्मुख आकर खड़ी होजाती थी और मुस्करा कर कहती थी, 'मैं तो पतिता हूं ही, परन्तु आपतो पतित नहीं। बलवान् बनिए ! ऐसा भी क्या कि कोई भी बालिका देखी और यौवन के उन्माद में पागल बनकर उधर को ही बह लिए। यौवन में आकर्षण है, यह सच है, परन्तु कलिकाएँ सूंघने और देखने के लिए होती हैं। हर कलिका का इत्र नहीं निकाला जाता राजन ! तुम हृदयवान पुरुष हो, जिसने

हृदय का सम्मान करना जाना है । तुम्हारे ही बल पर......' और बस वह लोप होजाती थी ।

यह परिवर्तन शीलाने स्वयं अपनी आँखोंसे देखा और अनुभव किया कि राजन बन्दी है, स्वतन्त्र नहीं । बन्दी मृग पर क्या जाल फैलाया जाय ? यह उसे अपनी निर्दयता प्रतीत हुई । वह राजन के पास आकर धीरे से बोली, "मुझे क्षमा कर दो राजन !"

"क्षमा ! कैसी क्षमा शीला ! तुमने तो कोई अपराध नहीं किया ।" राजन बोला ।

"आप कहते हैं कि नहीं किया, परन्तु मन आपका मुझे कसूरवार ठहरा चुका है । मुझे मेरे गाँव में छोड़आओ राजन ।" शीला ने कहा ।

और शीला अपने गाँव चलीगई । राजन उसे उसके गाँव में छोड़-कर चलते समय बोला, "दोष तुम्हारा नहीं शीला ! मेरे भाग्य का दोष है । पता नहीं कैसा भाग्य लेकर आया हूं कि लोग प्रेम करते हैं, कहते हैं कि वह प्रेम करते हैं और फिर भी मुझसे दूर-ही-दूर रहने का प्रयास करते हैं । मुझसे कुछ डरते से हैं, जाने क्यों ? कुछ बुरा आदमी तो नहीं हूं मैं । तुमने कैसा अनुभव किया शीला ?"

शीला—"बुरे ! आप बहुत बुरे हैं राजन ! आवारा ठहरे न ! आपने ही तो कहा था कि आप आवारा हैं ।"

राजन—"परन्तु क्या तुमने भी कोई आवारगी पाई मेरे अन्दर ?"

शीला—"बहुत बड़ी ।" और यह कहकर शीला ने राजन के दोनों हाथ पकड़ते हुए कहा, "तुम क्या जीवन में किसीको भी किनारे से लगासकोगे राजन ! सभीको बीच-धार में लेजाकर डुबादेना अच्छी बात नहीं ।"

राजन—"परन्तु अब जो तुम मुझे बीचधार में धक्का देरही हो शीला ! इसका क्या उत्तर है तुम्हारे पास ?"

शीला—"उत्तर अपने मन से पूछो राजन ! मैं तो जहाँ पहुँचचुकी वहाँ से पीछे हटना मेरे लिए असम्भव है ।" और यह कहकर शीला ने

एक लम्बी श्वाँस ली। शीला रोरही थी। राजन लौटपड़ा और वह उस दिन वापस न जासका अपने मंदिर को।

— ६ —

मधु ने अपने मकान के एक कमरे में मन्दिर की स्थापना करली थी और अब वह एकान्त में कभी-कभी उसी कमरे के अन्दर घन्टों तक नृत्य कियाकरती थी। उस्ताद कल्लन समझते थे कि रियाज़ कररही है और उसका यह एकान्त रियाज़ देखकर मन-ही-मन प्रसन्न होते थे कि अब मधु नाचने में नाम करजायगी। बात कुछ सच भी थी कि इधर कुछ दिन से मधु की प्रसिद्धि दूर-दूर तक होती जारही थी। दिल्ली के तमाशबीन तो नाच देखने के लिए आते ही थे; कुछ बाहर के मनचले भी नाम सुनकर इधर-उधर से आनेलगे थे।

मधु अब कल्लन मियाँ के हाथ की गुड़िया नहीं थी, कि जिसे वह जहाँ चाहें नचाएँ और जितनी देर चाहें नचाएँ। उसके नाचने का एक समय था और अपने कमरे के अतिरिक्त वह और कहीं नाचने के लिए नहीं जाती थी। कई बार बड़े-बड़े अवसरों पर उसने नाचने जानेसे मना करदिया था। बाईजी और कल्लन मियाँ ने लाख खुशामद कीं, लाख मिन्नतें कीं, और अन्त में धमकाने-फुसलाने का भी प्रयत्न किया; परन्तु मधु के पिछली बार चलेजाने की बात याद करके चुप हो रहे, सोचा कि कहीं अंडों के फेर में मुर्गी से ही हाथ न धोने पड़ें।

मधु अब अपना यह कार्य स्वतंत्र रूप से करती थी। संध्या को आनेवाले तमाशबीनों पर भी उसका रौब था। उसके कमरे पर किसी को बेहूदा मजाक करने की आज्ञा नहीं थी। मदिरा-पान करके कोई उसके कोठे पर नहीं चढ़सकता था। उस्ताद कल्लन और बाईजी को विशेष रूप से हिदायत थी कि कोई इस किस्म का आदमी कोठे पर न चढ़ने-पाये। बात तनिक दिक्कततलब अवश्य थी, परन्तु जिसदिन से उन्होंने

अपने पुराने यार राजासाहब को यहाँ से अपमानित होकर जातेहुए देखा था उस दिनसे उनकी हिम्मत पस्त होगई थी।

मधु का काम दिन-दूना और रात-चौगुना चमकरहा था, परन्तु उस्ताद कल्लन को यह बात पसन्द नहीं थी। मधु उनके हाथ से निकलगई, इसका उनके दिल पर गहरा घाव था। वह मधु के नौकर बनकर नहीं रह सकते। एक दिन उन्होंने बाईजी से साफ-साफ कहदिया कि वह अब इस कोठे पर नहीं आयँगे और न ही उनका कोई साजिन्दा ही आयगा। बाईजी और उस्ताद का पुराना मेलजोल था। उन्होंने लाख समझाया, परन्तु उस्ताद ने एक न मानी। इसी समय सामने से मधु आगई। मधु ने मुस्कराते हुए कहा, "क्यों उस्तादजी ! क्या याद नहीं है वह हन्टर जो आपने मेरी कमर पर लगा-लगाकर मुझे नाचना सिखलाया था। वह लगा-लगाकर तुमने मुझे नाचनेवाली बनाया और अब वही लगालगाकर मैं तुम्हें इन्सान बनाऊंगी।"

मधु के यह शब्द सुनकर उस्ताद आगबबूला होउठे। वह बोलने का प्रयास करतेहुए भी एक शब्द न बोलसके। उनका जबाड़ा बन्द था और कभी-कभी दाँत आपस में रगड़जाते थे। हाथों की मुट्ठियाँ बन्द होगई थीं और आँखों की त्योरी लाल थी। उस्तादजी को अपनी उस्तादी पर नाज था। न जाने कितनी मधु उन्होंने आजतक अपने हाथ के नीचे से निकालदी थीं। उनके लिए एक मधु क्या, दस मधु वह लासकते थे। जीने के नीचे तक पहुँचकर एक बार फिर लौट कर आये तो मधु ने फिर उसीप्रकार मुस्करा कर कहा, "क्यों उस्तादजी क्या इन्सान बनना मंजूर है ?" और वह फिर नीचे उतरगये। इस प्रकार की घटनाएँ मधु के इस बार लौटने के पश्चात् कईबार हो चुकी थीं, परन्तु हरबार उस्तादजी लौटआते थे, आज वह लौटकर नहीं आये।

बाईजी अपने कमरे में गईं तो उन्होंने देखा कि सन्दूक का ताला टूटा पड़ा था और उसमें से पाँच हजार के नोट गायब थे। नोट

उस्तादजी के अतिरिक्त और कोई नहीं लेजासकता था। बाईजी चीख पड़ीं। मधु बाईजी की चीख सुनकर उधर गई तो बाईजी पलंग पर पछाड़ खाये पड़ी थीं और बिलख-बिलख कर रोरही थीं। मधु ने पूछा, "क्या बात है बाईजी ?"

बाईजी ने सन्दूक की ओर संकेत कर दिया।

मधु खिलखिला कर ज़ोर से हँसपड़ी और फिर मुस्कराकर बोली, "बाईजी ! आपके बिना उस्तादजी अपने कार्य में सफल न हो सकेंगे। आप भी उनका साथ दें तो अच्छा रहे। बात तो जब है कि जब मेरे सामनेवाले ही कमरे पर आपलोग दूसरी मधु लाकर बिठला दें या यदि आप लोग कहेंगे तो मैं यह कमरा आपको खाली कर दूंगी।"

बाईजी स्तम्भित रह गईं। अपनी चालबाजी पर उन्हें इससमय रोना आरहा था परन्तु किसी प्रकार बनावटी रोकर बोलीं, "बिटिया मधु ! तुमने मुझे भी गलत समझा। मैं तो सोचती थी कि अपना यह बुढ़ापा तुम्हारे ही सहारे काटदूँगी परन्तु इधर देखती हूँ कि तुम भी मुझसे घृणा करनेलगी हो। मैंने तुम्हारे साथ क्या बुरा किया भला मधु ! सोने की डंडी पर तुलवा दिया तुम्हें। बड़ों-बड़ों की नजर का तारा बना दिया तुम्हें।"

"बस चुप करो बाईजी ! मैं यह सब कुछ नहीं सुनना चाहती। मुझे सब-कुछ पता है कि तुम लोग मुझे किस प्रकार यहाँ लाये थे। परन्तु वह दिन जीवन का अब लौटनेवाला नहीं। तुमको मैं इस घर से निकलजाने के लिए नहीं कहती, परन्तु यहाँ होगा वहीं जो मैं कहूँगी। रुपया मुझे उस समय अवश्य खरीद सका जब मैं अनजान और बेजबान थी, परन्तु आज मैं रुपये का कोई मूल्य नहीं समझती। देखती नहीं हो कितना रुपया मेरे पैरों पर रोज गिरता है।"

"लेकिन यह सब किसकी दौलत ?" बाईजी ने झपटकर नाक-भौं चढ़ाते हुए सामने आकर कहा।

मधु—"तुम्हारी बदौलत, उस्तादजी की बदौलत।"

बाईजी—"फिर ?"

मधु—"फिर क्या ? मुझे नहीं चाहिए यह दौलत। ले तो जारहे हो ताला तोड़कर। ताला खोलकर लेजाते तो क्या मधु मना करने वाली थी ?"

बाईजी रोरही थीं।

मधु—"नाटक करने में आपलोग बहुत निपुण हैं।"

बाईजी—"इसे नाटक कहोगी मधु ! दिल के फफोलों को तुम मजाक समझरही हो। तुम हमें नहीं समझ पाओगी मधु !"

मधु—"नहीं समझपाई थी सचमुच, परन्तु आज तो तुम्हें मुझसे अधिक समझनेवाला इस संसार में कोई दूसरा न मिलेगा।"

इतना कहकर मधु वहाँ से अपने कमरे में चलीगई और सीधी जाकर अपने देवता के सामने घुटने टेककर बोली, "देवता ! मुझे इस पाप-कुण्ड में धकेलकर फिर दोषी भी मुझे ही क्यों बनाना चाहते हो ? मेरा तो कोई अपराध नहीं, कोई दोष नहीं। जहाँ भी तुमने मुझे लाकर रखा, मैं वहींपर प्रसन्न हूँ।'

"राजन को एक बार मेरा यह रूप भी दिखलादो देवता ! वह यहाँ आकर स्वयँ अपनी आँख से देखले कि मधु ने उसके साथ छल नहीं किया, विश्वासघात नहीं किया। जो कुछ मधु ने किया राजन के लिए किया। वह राजन को समाज में अपमानित होतेहुए नहीं देखसकती।"

मधु की तबियत आज ठीक नहीं थी। उस्तादजी जा चुके थे, थोड़ी देर बाद बाईजी भी धीरे-धीरे जीने से नीचे उतरगईं। नौकरने आकर मधु को सूचना दी कि बाईजी मधु की अच्छी-अच्छी साड़ियाँ लेकर अभी-अभी जीने से उतरी हैं और नीचे एक ताँगे पर सवार हुई हैं। उस्ताद कल्लन भी उसी ताँगे में बैठे हुए थे। मधु ने सुनकर कहा, "ठीक है। उन्हें जाने दो। किसी काम से गये होंगे। तुम लोग जीने के किवाड़ बन्द करके ऊपर आराम करने चलेजाओ।"

मधु अब इस लम्बे-चौड़े मकान में अकेली ही रहगई। उसने

तुरन्त अपने अन्दर साहस बटोरा और नौकरों को ऊपर से बुलवाकर इधर-उधर के सब कमरों की सफ़ाई कराई। फिर नये तरीके से कमरे को सजवायागया। अभी मधु कमरे को सजवा ही रही थी कि इतने में उस्ताद नजीर खाँ सामने से आते दिखलाई दिये। उस्तादजी को मधु ने सलाम किया और उस्तादजी ने भी मुस्करातेहुए जवाब दिया। फिर उस्तादजी बोले, "मैंने सुना है कि उस्ताद कल्लन ने आपके यहाँ काम करना बन्द करदिया है। क्या यह सच है?"

मधु—"जी।"

उस्तादजी—"तब क्या दूसरा इन्तजाम करलिया आपने?"

मधु—"अभी कुछ निश्चय तो नहीं कियागया, लेकिन करना तो होता ही उस्तादजी!"

उस्तादजी—"हाँ हाँ, क्यों नहीं? यही तो मैं भी पूछरहा था।"

मधु—"क्या आपका विचार काम सँभालने का है?"

उस्तादजी—"यदि आपकी इनायत होजाय तो क्या नहीं हो सकता? इतना तो आपको पता ही होगा कि यहाँ बाजार में जितने भी उस्तादी का आज दम भरते फिर रहे हैं उन सभी ने दो चार हाथ इस उस्ताद से जरूर सीखे होंगे।"

"क्यों नहीं?" मुस्कराकर मधु बोली। "आपका नाम मैंने सुना है। कई लोग आपकी तारीफ़ करते हैं। लेकिन मेरा मामूली साज़ से काम नहीं चलेगा। इसलिए आप यहाँ जो साज़िन्दे लाएँ वह चुनेहुए होने चाहिएँ।"

उस्तादजी—"चुनेहुए लीजिए सरकार! दिल्ली की नाक साज़िन्दे होंगे। क्या मजाल जो कोई भी नाक पर मक्खी बैठने दे। आप सुनकर झूम न उठें तो क्या बात? समा बाँध देंगे, समा। एक-से-एक बीहड़ का बच्चा पैदा किया है इन करामाती हाथों ने।" मलमल के कुर्ते की आस्तीनें चढ़ाते हुए ज़रा अन्दाज के साथ उस्तादजी बोले।

बात निश्चित होगई और आज रात को वास्तव में वह समा

बँधा, वह समा बँधा कि नृत्य करती हुई मधु भी झूम उठी। वह आज जी खोलकर नाची। उसे गर्व था कि एक दिन जो लोग उसे धोखा देकर लाये थे उनसे उसने जी खोलकर बदला लिया। कल्लन मियाँ पाँच हजार रुपया लेगये और बाईजी मधु की साड़ियाँ। और यहाँ था ही क्या; परन्तु आज फिर रुपया पानी की तरह बरसा। उस्ताद कल्लन मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए।

रुपया बरसता देखकर उस्ताद नजीरखाँ का दिल बाँसों उछलरहा था और वह मधु के हर पैर पर मुग्ध हो-होकर नाचउठते थे। उनका बार-बार जी चाहता था कि वह मधु के पैर चूम लें, परन्तु उस्तादी का खयाल करके वहीं बैठे रहजाते थे। आज जी खोलकर दाद दी उन्होंने और साथ-ही-साथ मन-ही-मन उस्ताद कल्लन को भी उन्हें मानना पड़ा। चमक ला दी मधु में, निखार ला दिया। बिला कटा-छटा हीरा था, जिसे काट-छाँट-कर जौहरी ने बाजार में सजा दिया था।

मधु अब धनवान थी, कला के क्षेत्र में उसका नाम था, कुछ पारखी उसे कलाकार के नाते सम्मान के साथ भी देखते थे और परवानों की तो कुछ गिनती ही नहीं थी; परन्तु मधु का चित्त अशान्त था। यह सब कुछ होनेपर भी समाज में उसका कोई मान नहीं, कोई मर्यादा नहीं। जो लोग कोठे पर आकर उससे घंटों बैठकर बातें करने में भी नहीं थकते थे, वही समय-बे-समय समाजके बीच मधु से आँखें चुराकर निकल जाना चाहते थे। समाज का यह उपहास देखकर कभी-कभी मधु रोती थी और कभी पगली की भाँति कितनी ही देरतक खिलखिलाकर हँसतीरहती थी। आज जब वह एकान्त में बैठी थी तो कवि महोदय आये और उन्हें बड़े सत्कार के साथ मधु ने कमरे में बिठलाया।

बैठते ही कविवर ने पूछा, "आज उस्ताद कल्लन कहीं दिखलाई नहीं देरहे।"

मधु—"जी! वह चलेगये।"

कवि—"यदि आपत्ति न हो तो क्या पूछ सकता हूँ कि वह कहाँ चलेगये मधु रानी ?"

मधु मुस्करा कर बोली—"बतलाने में तो आपत्ति कुछ न होती परन्तु उस्ताद लोगों की बातें उस्ताद ही जानसकते हैं । आप तो उस्तादजी के पुराने मित्रों में से हैं, क्या आप भी न जान सके?"

कवि उछलकर बोले, "मैं ! क्या कहरही हैं आप ? मैं भला उन्हें क्या जानूं ? मैं यहाँ क्या उनके लिए आता हूं ?"

मधु—"क्यों क्या उनके लिए आना कोई पाप है ? उस्तादों के पास उस्ताद और मित्रों के पास मित्र आते ही हैं ।"

इसके पश्चात् कवि ने अपनी कल्पना की कुछ उड़ानें भरीं । मधु के यौवन और सौन्दर्य की प्रशंसा की, कुछ मधु की कला का बखान किया, कुछ मधु की ख्याति के विषय में विवरण दिया; कुछ मधु की सज्जनता का सम्यान किया और फिर तनिक लज्जा तथा सौम्यता के साथ बोले, "मधु रानी ! तुम हो बहुत निष्ठुर ।"

मधु—"यह आपने कैसे जाना ?" नेत्रों की पुतलियाँ घुमाकर मधु ने पूछा ।

कवि—"यह क्या जानने की बात है मधु ! स्पष्ट ही तो है सब-कुछ । तुमने आजतक कवि के हृदय को नहीं पहिचाना । कवि के हृदय की कोमलता को नहीं जाना । मेरी भावनाओं में तुम बस गई हो । तुम मेरी कल्पना की देवी हो मधु ! तुम्हारा रूप मेरे नेत्रों की पुतलियों में समागया है ।"

मधु मुस्कराती हुई बोली, "क्यों व्यर्थ की बातें करते हो कवि ! यहाँ एकान्त में आकर तुम्हारा प्रेम बहुत उबाल खानेलगता है । उस दिन जब दीवानहाल के सामने सभा से निकलते हुए मैंने तुमको देखा था तो आँखें बचाकर निकल गये थे । तुम लोग तमाशबीन हो, तमाशा देखिए ! संसार में तमाशा देखना भी तो एक बड़ा कामहै । क्यों व्यर्थ की झूठी भावनाओं में बहने का नाटक करते हो ? नाटक तुमसे अधिक मैं

करसकती हूँ परन्तु मैं नाठक करने का व्यापार नहीं करती। मैं नृत्य करती हूँ और वही मेरा व्यापार है। सिनेमावाले टिकट लगाते हैं, परन्तु मेरे यहाँ कोई टिकट नहीं। जो लोग टिकट का दाम देसकते हैं वह दें और जो न देसकें वह न दें। परन्तु शिष्टता का पालन सभी को करना होगा।" इतना कहकर मधु उठखड़ीहुई।

मधु का चित्त आज बहुत खिन्न था। वह सवेरे उठी तो स्वप्न देखरही थी। स्वप्न क्या था, उसके गत-जीवन की एक स्मृति थी। साथ में था राजन और वह दोनों गंगा के किनारे-किनारे एकान्त में एक दूसरे की बाँह पकड़े जारहे थे। मधु के पैरोंमें घुँघरू बँधे थे और वह पग-पग पर नृत्यका-सा ठेका देती थी तथा राजन के कंठ से मधुर स्वर निकलपड़ता था। जंगल का शान्त वातावरण मधुर रस से परिप्लावित होउठा था। दोनों मिलकर पर्वत के उसी ऊँचे शिखरपर पहुँचगये, जिसकी स्वच्छ शिला पर बैठकर राजन ने मधु को अपनी ओर खींचा परन्तु मधु अपना हाथ छुड़ाकर दूर होगई। राजन ने देखा कि मधु के नेत्रों से अश्रु-धारा बहरही थी। वह अपने उर की पीड़ा किससे कहे कि जो प्यार पाकर भी प्यार को अपना न सके। राजन उसी प्रकार मौन था और मधु अश्रु बरसा रही थी—

राजन गाउठा—

हृदय का तेरे री मधु! भार
दृगों से ढलजाता हरबार।
अरी बावली हँसी-हँसी में
भरलाई सीपी में सागर,
भोलेपन कीभी कुछ हद हो
लेआई अन्तर को उरपर।
घुमड़कर तेरे उर का प्यार
दृगों से ढलजाता हरबार।

करुणा की तू करुण कहानी
बनी, छुपाये उर में ज्वाला,
उसकीही लपटों में पलकर
चमक-चमक पड़ता उर-छाला,

हृदय का चिर-एकत्रित भार
दृगों से ढलजाता हरबार।

तेरे उर की कोमल आशा
निश्वासों में जलजाती है,
सोने की सुथरी अभिलाषा
उर-ज्वाला पर गलजाती है।

मधु री ! तेरे उर का प्यार
दृगों से ढलजाता हरबार।

मधु फिर खिंचकर राजन के पास पहुँचगई। राजन मधु को अंक में भरना ही चाहता था कि किसी ने द्वार खटखटादिया। मधु घबराकर जागउठी। स्वप्न बीच में टूटगया, मानो मधु का हृदय टुकड़े-टुकड़े होगया। उसने हृदय थामलिया। वह चिंतित-सी अपने पलंग पर बैठी थी। मधु का इस बार हृषीकेश से लौटने के पश्चात् जीवन ही बदल गया था। सारा दिन मौन, केवल संध्या-समय मुजरे में न जाने कहाँ से उसमें वही बाँकापन, वही चुलबुलापन, वही लचक, वही नाज़ और अंदाज़, वही सब-कुछ, वही यौवन की मस्तियों से पूर्ण लहलहाता हुआ जीवन, जिसमें चिन्ता नहीं, फिक्र नहीं, बस सब कालों में मधुमास-ही-मधुमास था। दिनमें मिलनेवाले व्यक्ति जब रात्रि को मधु से भेंट करते थे तो उन्हें ऐसा प्रतीत होनेलगता था कि मानो यह वह मधु नहीं है; यह कोई और मधु है।

कभी-कभी कुछ टीस-सी अवश्य पैदा होती थी मधु के हृदय में, परन्तु वह प्रसन्न थी और संतुष्ट थी उस कार्य से जो उसने कियाथा।

उसने राजन के लिए वह किया जो एक सच्ची प्रेम करनेवाली आदर्श नारी को करनाचाहिए था। उसे गर्व था अपने कार्य पर। परन्तु यह लालसा उसके हृदय में अवश्य थी कि एकबार राजन जानले कि उसकी मधुने उसके लिए कुछ त्याग किया है, कुछ बलिदान दिया है।

इधर मधु का कईबार यह भी मन होआया था कि वही जाकर किसी दिन राजन से मिलआये, परन्तु उसने स्वयँ अपनी ओर से मिलने के सम्बन्ध को बढ़ावा देना उचित नहीं समझा। हृदय की पुकार को हृदय में ही दबादिया। मधु एकान्त में बैठकर सर्वदा मुस्कराती थी और सोचती थी कि क्या वह वास्तव में नाटक खेलरही है! यदि उसने राजन को छोड़दिया, तब फिर क्यों उसका खयाल करे? और यदि उससे सम्बन्ध बनाना है, तो खुलकर क्यों न कहडाले वह सबकुछ! परन्तु कह डालने का उसमें साहस नहीं था। वह अपने गायक के कोमल हृदय की कमनीयता को पहिचानती थी। उसकी भावनाओं को ठेस लगाना.... ....नहीं, नहीं, यह वह नहीं कर सकती, कदापि नहीं करसकती।

मधु अधखिला मन लेकर अपने छोटे मन्दिर में गई और वहाँ जाकर सुबह-ही-सुबह आज खूब जी खोलकर नाची। नाचतीरही कितनी ही देरतक और फिर थककर अपने देवता के चरणों में गिरपड़ी।

मधुने समाज का जो रूप इसबार कोठे पर बैठकर देखा वह निराला ही था। उसने इसबार तो इस समाज की धज्जियाँ बिखेरने का मानो ठेका लेलिया था। कुछ दिन में तमाशबीन घबराने लगे इस रास्ते पर आतेहुए परन्तु आते अवश्य थे। मधु की कला में वह बल था कि जो बदमाशों को शरीफ़ बनादेती थी उसके कमरे के ऊपर। जो लोग दूसरे स्थानों पर मदिरा पीकर अनर्गल बकवास करते पायेजाते थे वह सोचसमझकर यहाँ पैर रखते थे। आनेवाले वही थे, परन्तु यहाँ उनके सामाजिक साज का कान मेंठ दिया गया था। इसलिए वहाँ उन्हें मधु के स्वर के साथ स्वर मिलाना होता था। अपना-अपना स्वर वह स्वतन्त्रतापूर्वक नहीं अलापसकते थे।

एक दिन पत्रकार महोदय ने मधु से कहा भी था मुस्करा कर, "मिस मधु, आपकी नृत्यशाला क्या है, मैं तो इसे कभी-कभी सभ्यता का केन्द्र कहा करता हूं। आपकी शिक्षा-प्रणाली का मैं वास्तव में कायल हूं।"

इसपर मधु ने मुस्कराकर कहा था, "हमारा भी एक समाज बन रहा है पत्रकार महोदय! मैं चाहती हूं कि यदि मेरे अन्दर इतनी सामर्थ नहीं है कि मैं भारतीय समाज का, जिसकी अक्रमबद्धता के कारण आज मानवीय अधिकारों से वंचित हूं, तो कम-से-कम मैं अपने इस छोटे अपमानित समाज का स्तर ऊँचा करने का तो प्रयास करूँ। यदि आज समाज को अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए नारी के बलिदान की आवश्यकता है तो कम-से-कम वेश्याओं के जीवन कीभी कुछ रूपरेखा बाँधनी चाहिए। बस इतनाभर प्रयास आज मैं करती हूं। आपने मेरी भावना को थोड़ा सा टटोलने का प्रयास किया तो मैने आपपर अपने भावों को व्यक्त करदिया।"

पत्रकार—"आपके विचार गो बहुत प्रगतिवादी तो नहीं हैं, परन्तु जिस समाज में आप बैठी हैं उसमें यदि यह भावना भी आजाय तो क्रान्ति का मार्ग तय्यार किया जासकता है।"

मधु ने कहा—"क्रान्ति का मार्ग कैसा?"

पत्रकार—"उथल-पुथल का मार्ग। इसको पलट, उसको उलट का मार्ग। यानी अशान्ति का मार्ग, यानी शान्तिका मार्ग। समझीं मधु! यह राजनीति की चालें हैं, जिनके चक्कर में हम पत्रकारलोग रातदिन झकोरे खाया करते हैं। कभी हैडिंग इधर को तोड़ते हैं तो कभी उधर को मरोड़ते हैं। यानी सब बात हैडिंग में ही भर देना चाहते हैं। समझीं........"

मधु ने कहा—"मैं बिलकुल समझगई पत्रकार महोदय!"

मधु को मुस्कराता हुआ देखकर पत्रकार महोदय ने तनिक जवाहरकट के बटन खोलकर कहा, "आज बड़ी ही गर्मी है मधु रानी! परन्तु

इतनी गर्मी में भी तुम्हारी कला के जो स्वर मेरे कानों में बस गये हैं जबतक उनपर तुम्हारे चरणों की रुनझुन की चोट नहीं पड़जाती तबतक भावना उदय ही नहीं होती; यानी सच मानो मधु ! रात की ड्यूटी नहीं दीजाती पत्र की। परन्तु जब तुम्हारा स्वर कानों में भर कर जाता हूं तो सोया हुआ भी जागता-सा रहता हूं। लेखनी विद्युत-गति से चलती है और भावनाएँ तथा कल्पनाएँ दल बाँधकर मस्तिष्क में कूदपड़ती हैं।"

जब पत्रकार महोदय ने अनर्गल बकवास प्रारम्भ करके इधर-उधर बहकना शुरू किया तो मधु उठगई और किसी अन्य कार्य पर जा लगी। इसी प्रकार का था मधु का दैनिक कार्यक्रम। यदि कोई नवा-गंतुक आता था तो वह उसका स्वागत बड़े मान के साथ करती थी, उसे खुलकर बातें करने का अवसर देती थी। इसीलिए मधु के पास कुछ विशेष सम्मानित व्यक्तियों ने भी आना प्रारम्भ करदिया था। मधु इस प्रकार अपने सामाजिक जीवन का वातावरण बदलने का प्रयास कररही थी परन्तु वह एकदम इस कार्य को छोड़ना नहीं चाहती थी। वह जानती थी कि वह एक मज़दूरिन है और मज़दूरी कररही है। मज़दूरी करना पाप नहीं, दोष नहीं। रही बात दिशा की, इसका अभी निर्णय होना था कि क्या वह वास्तव में गलत है। परन्तु समाज उसे करता हुआ भी गलत ही कहता है और इस विचार-धारा को फाँद जाने का साहस अकेली मधु में नहीं था। कभी-कभी वह फाँदने का साहस भी करती तो हृदय प्रकंपित हो उठता था और वह कुम्हलाये हुए सुमन के समान नीची गर्दन करके एकान्त में जाबैठती थी।

वह साहस पैदा कररही थी अपने में परन्तु अपने साहस पैदा करने का शिकार वह राजन को नहीं बनासकती थी। राजन को तो न जाने क्यों मधु ने बहुत ही कोमल रूप में देखा था। वह जब अपने अन्दर देविके दर्शन करती थी तो राजन में शिव की प्रतिमा उसे दिखलाई नहीं देती थी। राजनका भोलापन ही उसके हृदय में बसपाया था, राजनका

पुरुषत्व नहीं; वह उसने अपनी आँखों से देखा भी नहीं था।

आज जीवन में प्रथम बार मधु को राजन में शिव की प्रतिमा दिखाई दी।

—७—

उस्ताद कल्लन इस बाजार के माने हुए आढ़ती थे और इन्होंने बाईजी की शरकत में यह कार्य प्रारम्भ किया था। उस्ताद कल्लन उस्ताद जुल्लन के शिष्य थे और बाईजी उस्ताद जुल्लन की बाईजी की सुपुत्री थीं। पुत्री वह उन्हें कहती थीं, वह थीं या नहीं इसके विषयमें प्रामाणिक रूपसे कुछ नहीं कहा जासकता। उस्ताद कल्लनने बाजारमें उतरते ही अच्छा नाम कमाया और बाईजी भी अपने यौवन-कालमें इस बाजारकी प्रधान नायिका रहचुकी थीं। कईबार आपने मेरठवाले अपने प्रतिद्वन्दियों को नीचा दिखलाया और कईबार आगरेवालों को।

उस्ताद कल्लन और बाईजी का प्रेम आपसमें बढ़गया। विवाह आजतक न हुआ परन्तु, यह सम्बन्ध विवाहसे अधिक दृढ़ था। उस्ताद कल्लन के पराक्रम और उनकी कला पर बाईजी को नाज था। इसीलिए तो उन्होंने आजभी मधुके साथ चोरी करके कल्लन का साथ दिया। मधु! मधु क्या थी उनके लिए। एक खिलौना। ऐसे न जाने कितने खिलौने वह बना-बनाकर अपनी आँखोंके सम्मुख टूटते वह देखचुकी थी। कभी जबान पर उफ् तक नहीं आई। वह जीवनमें सर्वदा ही मुस्कराई। जिस समाजने उसे नीच बनाकर अपनेसे दूर करदिया था वही अनेकों बार रीझ-रीझकर उसके सम्मुख आया और उसके चरण चूमे। बाईजी जीवनभर उसपर मुस्कराती रहीं और मानो वही उनका जीवन-लक्ष बन चुका था। उस्ताद कल्लन और बाईजी ने अपना एक मार्ग निर्धारित किया था और उसीपर वह बड़ी प्रगतिके साथ जीवनका मजा लेतेहुए आगे बढ़रहे थे। परन्तु मधु ने उनका स्वप्न खाकमें मिलादिया। मधु ने उनके साथ विश्वासघात किया; उनका यही मत था।

मधु से अकेले अपनी शक्तिपर इस समय उस्ताद कल्लन और बाईजी

सामना नहीं ले सकते थे। इसीलिए दोनों निकले थे मधु की टक्कर पर दूसरी मधु बिठलाने के लिए। उस्ताद कल्लन और बाईजी उस दिन रुपया अपने साथ बाँधकर हरिद्वार, हृषीकेश और फिर उससे भी ऊपर पहाड़ोंमें निकल गये। उस्ताद कल्लन छैला बने हुए थे। मूंछों पर खिजाब लगाकर उन्हें काला करलिया था। बाईजी के गाल पिचके अवश्य थे परन्तु नया जबाड़ा चढ़वानेसे होंठ कुछ तन गये थे और गालों की झुर्रियाँ भी कम दिखलाई देने लगी थीं।

बाईजी इस पहाड़ी देहातमें बहिनजी के नामसे प्रसिद्ध थीं और उनके यहाँ आतेही आस-पासके देहात में सनसनी फैलजाती थी। उस्ताद कल्लन एक व्यापारी थे, इसे सब जानते थे, और इसीलिए उनके पहुँचते ही व्यापारके कारिन्दे इधर-उधर घूमने लगते थे। बाईजी देहातोंके प्रायः सभी घरों में स्वतन्त्रतापूर्वक चलीजाती थीं और स्पष्ट रूपसे सौदा करने में उन्हें कोई संकोच नहीं होता था।

बाईजी और कल्लन का यह व्यापारिक क्षेत्र था, जिसके अन्दर से वह अपने काम का माल मोललेते थे, उसके लिए पेशगी देते थे और अन्तमें अन्तिम मूल्यके साथ वह चुकता होजाता था। बड़े-बड़े तिलक-धारी दाँत निकालकर उस्ताद कल्लनसे हाथ जोड़ते हुए कहते थे, "उस्ताद सच जानो, खानेको एक दाना भी नहीं है घरमें।"

कल्लन—"खानेको दाना! नशेमें उड़ा दिया होगा।"

पंडित—"कसम खानेकी भी दारू नहीं पीता मालिक!"

कल्लन—"बस चुप रह। मैं सब जानता हूँ।"

और यही पंडित उस्ताद कल्लनके इस गाँवमें सबसे बड़े दलाल थे। इस आस-पासके देहातमें जितनेभी सौदे होते थे वह सभी इनकी मार्फत होते थे। गाँवमें पहुँचकर उस्ताद और बाईजी को पता चला कि पंडित जीका देहान्त होगया। उस्ताद कल्लन और बाईजी पर मानो बिजली टूटपड़ी। उन्होंने समझलिया कि बस आधी उधारकी रकम डूबगई। अब उसका उभरना कठिन था।

बाईजी पंडितजीके मकान पर गईं तो शीला वहाँ मौजूद थी। शीला बाईजीको देखकर भयभीत होउठी। राजन कुछ समझ न पाया इस रहस्यको, परन्तु उसका माथा ठनकगया। इधर आस-पासके देहात में भ्रमण करके उसने अपने गत जीवनकी एकान्तता और दुनियाँकी अनभिज्ञताको नष्ट करदिया था। राजन को अब संसार का बहुत कुछ ज्ञान था। राजनने बाईजीसे सप्रेम कहा, "आप कौन हैं जी ! और इधर आपका आना कैसे हुआ ?"

राजनके इस प्रश्न पर बाईजी मुस्कराईं और उन्होंने मन-ही-मन कहा, 'चार दिनके छोकरे ! तू कितना नादान है ? तू मुझसे पूछने चला है कि मैं कौन हूँ ? मैं तुझसे पूछती हूँ कि तू कहाँसे आटपका ? बाईजी हलकेसे नाटकीय मुस्कान बिखराकर बोलीं, "बेटा ! मुझसे पूछते हो मैं कौन हूँ ? मुझे कौन नहीं जानता ? मैं तो स्त्रियोंके उपकारके लिए सारे देशभरमें भ्रमण करके सेवा-भावसे कार्य करती हूँ। मैंने यहाँ भी आस-पास के देहातों में अनेकों गरीबोंको धन दिलवाया है और साथही उनकी कन्याओंके भारसे भी उन्हें मुक्त करदिया है। उन्हें मैंने कलाकी पुजारिन बनाया है और स्वतन्त्र रूपसे जीवनमें विचरने का मार्ग दिखलाया है।"

राजन चुपचाप यह सब बाईजीका व्याख्यान सुनतारहा। एक शब्द भी न बोला और अन्तमें बोला भी तो केवल दो शब्द, "यह व्यापार अब नहीं चलेगा बाईजी !"

बाईजी—"व्यापार ! इसे तुम व्यापार कहते हो।"

राजन—"मैं ही नहीं कहरहा बाईजी ! आपका हृदय जानता है।" और इतना कहकर राजन गम्भीर होउठा।

बाईजीने बातको बढ़ाना उचित नहीं समझा। वह मुस्करा-मुस्कराकर कुछ देर बातें करती रहीं परन्तु उनकी दृष्टि बराबर शीलापर गढ़ी हुई थी। इसी शीलाके ऊपर पंडितजी बाईजीसे गत वर्ष २००) उधार भी लेचुके थे; परन्तु शीलाको इस बातका क्या पता ? गऊका सौदा

करते समय गऊसे तो दाम नहीं ठहरायाजाता। बाईजी अन्तमें भी जब वहाँसे चलीं तो बहुत प्रसन्न थीं। उन्होंने शीलासे बातें करनेका भी प्रयत्न किया और एक-दो-बार नोटोंकी गड्डीको मखमलकी जाकट की जेबों में इधर-से-उधर बदला, परन्तु शीला खुलकर बातचीत न कर सकी।

बाईजी के चले जानेपर शीलाने बाईजीका कच्चा चिट्ठा खोलदिया और साथ ही यह भी राजनको बतला दिया, कि यही दोनों व्यक्ति एक दिन यहाँ से मधु को ८००) में खरीदकर ले गये थे। गाँवको दिखलाने तथा मधुको मूर्ख बनाने के लिए इन्हीं उस्ताद कल्लन ने मधुसे विवाह का स्वांग भी रचा था। परन्तु सुनते हैं······"

इतना कहकर शीला मौन होगई। उसे पसीना छूटरहा था। वह अचेतसी होकर भूमि पर बैठगई। राजनने शीलाको सँभालकर खाट पर लिटादिया और फिर पानीके छींटे उसके मुखपर दिये। शीला अचेत होगई थी। शीलाने चेतन अवस्थामें आतेही चिल्लाकर कहा, "राजन ! मुझे इस डायन से किसी तरह बचालो। तुम्हारे पैर पड़ती हूँ राजन ! वह उस्ताद कल्लन बड़ा खूंखार आदमी है। इस इलाके का जो थाना लगता है यह उसके थानेदारका मित्र है। अगर कोई आदमी यहाँ इसके सामने चूं-चपड़ करता है तो थानेसे गारद चली आती है।" शीला इस समय भयसे थर-थर काँप रही थी।

राजनने धैर्यके साथ यह सब सुना और फिर अन्तमें गम्भीरतापूर्वक कहा, "शीला ! तुम निश्चिन्त रहो। मेरे इस शरीरमें प्राण रहते तुम्हारा कोई बाल भी बाँका न करसकेगा। मैं तुम्हें नहीं जानेदूंगा। तुम्हें ही नहीं, मैं यहाँ की किसी कन्याको भी ऐसे धूर्त्त लोगोंके फन्देमें नहीं फँसने दूंगा। अपने प्राणोंका बलिदान देकर भी मैं उनकी रक्षा करूंगा शीला !"

शीलाका धड़कताहुआ हृदय कुछ शान्त हुआ। उसे विश्वास हुआ कि उसकी रक्षा करनेवाला कोई व्यक्ति इस पृथ्वी पर है। उसने

शान्तिकी साँस ली और खाटपर कुछ सँभलकर बैठगई। शीला इस समय प्रसन्न थी।

राजनने शीलाकी ठोड़ी अपनी उँगलीसे ऊपर करते हुए कहा, "घबरा गई शीला! तुम्हें तो अभी क्रान्ति करनी है। मैं सोचरहा हूँ कि मुझे आस-पासके देहातमें इसके विरुद्ध एक आन्दोलन खड़ा करना होगा।"

शीला कभी-कभी सोचने का भी प्रयास करती थी समाजकी इस दशा पर तो उसकी कुछ समझ में न आता था। आज उसने प्रश्न किया, "कुछ पूछना चाहती हूं आपसे?"

राजन—"अवश्य पूछो शीला!"

शीला—"समाजका यह पतन क्यों?"

राजन—"यह पतन निर्धनताके कारण है शीला! जितनी शीघ्रताके साथ भारत में जन-संख्या की वृद्धि हुई है उतनी प्रगतिके साथ उत्पादनके साधनोंकी वृद्धि न होसकी। सरकार विदेशी थी, जिसने सर्वदा अपने ही स्वार्थ पर दृष्टि रखी। भारतकी जनताके लिए कोई ऐसी योजना नहीं बनाई कि जिससे जनताको कोई काम मिल सके और देशकी दरिद्रता दूर हो। समाज की इस गिरीहुई दशासे कुछ लोगोंने यहाँ तक स्वार्थ-सिद्धि पर पग रखा कि उन्होंने रुपये से मनुष्यको खरीदना ही प्रारम्भ करदिया। मनुष्यकी शक्तियोंको तो खरीदा ही जाता था, मनुष्यके शरीर को भी खरीदा जाने लगा।"

राजनके इस गम्भीर उत्तर को सुनकर शीलाका मन शान्त होगया। उसके हृदयमें अभी-अभी अपने पिताजीके ऊपर बड़ा क्रोध आरहा था, परन्तु राजन की बात सुनकर वह कुछ बोली नहीं; मौन होगई। उसने हृदय की भावना को हृदय में ही दबा लिया।

राजनभी बहुत देरतक मौन लेटा रहा। प्रातःकाल होते ही राजन ने देखा कि उस्ताद कल्लन बाईजी के साथ मकान पर आपधारे और

शीलासे, आगे बढ़कर, उन्होंने बातें करनेका प्रयास किया।

राजन—"देखिए महाशय! जो बातें आपको करनी हैं वह आप दूरखड़े होकर मुझसे करें। आपकी हर बातका उत्तर मैं दूंगा।"

कल्लन—"लेकिन हमारा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं। तुम्हें क्या पता कि हमारा इस लड़कीके साथ पारसाल रिश्ता तै होगया था। पंडितजीने स्वयँ अपने हाथ से किया था। कुछ रुपयेकी कमी रहगई थी, सो वह मैं पूरा करनेको तय्यार हूं। यदि आप इनके कोई भाई-बिरादर हों तो उसे चुकता करलें।" बात उस्ताद कल्लनने साधारण सरलता पूर्वक कही।

राजन का तमाम बदन क्रोध से काँपउठा, परन्तु उसने क्रोध के वेग को रोकतेहुए कहा—"देखिए महाशय! आपकी बातचीत पंडित जी से हुई थी और वह इस समय स्वर्ग में बैठे हैं। इसलिए अपनी बात का अन्तिम निर्णय कराने के लिए आपको भी स्वर्गलोक में उन्हीं के पास जाना होगा।"

कल्लन—"आप बड़े मसखरे मालूम देते हैं जी!" मुस्करा कर कहा।

राजन—"जी हाँ! मसखरा न हूँ तो इन घावों को दिल पर कब तक खासकूंगा। आपके शब्दों में कितना ज़हर भरा हुआ है महाशय! यह आप इन्सान बनने के बाद ही पहिचानसकेंगे। आप तो अब जब होचुके हैं। दोष पूरा-पूरा किसी का नहीं, परन्तु समाज गिरता जा रहा है, यह सच है। हम सब मिलकर इसे गिरारहे हैं: एक दूसरे को गिराकर प्रसन्न होता हैं परन्तु यह नहीं समझता कि हम दूसरे को गिराकर अपने गिरने का मार्ग बनारहे हैं।" राजन का मुख इस समय बहुत गम्भीर था।

उस्ताद कल्लन राजन की बात का कुछ भी अर्थ न समझसके। उनके लिए यह अनर्गल बकवास थी परन्तु राजन इन दोनों की मुखाकृतियों को देखता था और सन्न रह जाता था। राजन को लगा कि मानो इस शीला बालिका पर यह दो यमदूत आकर खड़े हो गये हैं।

शीला के तन में इस समय काटो तो रक्त नहीं था। वह राजन के एक संकेत पर इस समय कुए में गिर सकती थी, गंगा में कूद सकती थी और हलाहल पान करसकती थी।

आज उस्ताद कल्लन से राजन की बातें आगे न बढ़सकीं। उस्ताद कल्लन संध्या-समय घर से अकेले घूमने के लिए इस इरादे से आये कि राजन को बातों-बातों में कुछ दूर लेजासकें और इस बीच में बाईजी शीला को बहका-फुसलाकर बातें कर सके परन्तु राजन द्वार पर खड़ा-ही-खड़ा कल्लन से बातें करतारहा। उस्ताद की बात का उत्तर देता हुआ बोला, "उस्ताद हम लोग दिनभर की मेहनत करने के पश्चात् इतने थकजाते हैं कि संध्या को घूमनेजाना कठिन होजाता है। आप लोग सेठ-साहूकार ठहरे। आपको तो दिनरात घूमने से ही काम रहता है। मैं समझता हूँ कि आपलोग तो बैठे-बैठे भी घूमते ही रहते होंगे। धन का नशा भी खूब नशा है। यह बिना पिये ही आपको दीवाना बना देता है।"

कल्लन मियाँ ने इस समय ठर्रा का जाम चढ़ाया हुआ था। आँखें लाल थीं और इस खुमारी में जब उसने धन की महिमा का बखान राजन के मुख से सुना तो उसकी आत्मा प्रसन्न हो गई। वह समझ गया कि उसके रुपये का जादू प्रभाव कररहा है। रात्रि को यही सूचना उसने जाकर बाईजी को दी तो बाईजी नाच उठीं। उस्ताद की गर्दन में हाथ डालकर प्रेमपूर्वक बोलीं—"इसीलिए तो तुम्हें उस्ताद मानता है सारा जमाना। आपका वार क्या खाली जानेवाला है?"

और उस्ताद कल्लन फूलकर कुप्पा होगये। बाईजी के मुख से अपनी प्रशंसा सुनने में उन्हें जो आनन्द आता था, वह अन्य किसी वस्तु में नहीं आताथा। दूसरे दिन सुबह-ही-सुबह बाईजी एक पिटारा मेवों का लेकर राजन से मिलने गईं। बैठकर कुछ देर इधर-उधर की बातों के पश्चात् बाईजी ने पिटारा आगे करतेहुए कहा, "बच्चा, तुम्हारे लिए उस्तादजी ने यह मेवा भेजे हैं।"

राजन—"मैं मेवा नहीं खाता बाईजी ! और शीला को भी इनका कोई शौक नहीं है।"

इसके पश्चात् बाईजी ने बड़ा आग्रह किया, परन्तु राजन उन्हें रखने के लिए बिल्कुल तय्यार नहीं हुआ।

बाईजी ने उस्ताद कल्लन को जाकर जब यह सूचना दी तो वह आगबबूला होउठे। उन्होंने एक बार तो सोचा कि चलें जबरदस्ती ही शीला को लेचलें परन्तु फिर तुरन्त उन्हें पुलिस का ध्यान आया। वह सीधे थाने में पहुँचे और जाकर सारी रामकहानी अपने पुराने मित्र थाने के दीवानजी को सुनाई। परन्तु इसबार मित्र ने कुछ उत्साह की बात नहीं की। उसने आँखों-ही-आँखों में उस्तादजी को डाँटदिया और फिर थाने से बाहर कुछ दूर लेजाकर बोले, "उस्ताद, भाग जाओ। इतने दिन तक तुमसे हमने हजारों रुपया कमाया है। इसीलिए तुम्हें वफादारी से बतला रहे हैं। थानेदार साहब बड़ा सख्त आदमी है। कई उस्तादों को यह हवालात की सैर कराचुका है। यदि उसे कानोंकान भी पता चलगया तो वह तुम्हें एकदम हवालात में बन्द करदेगा।"

उस्ताद कल्लन का यह रास्ता भी बन्द हो गया। उन्हें पुलिस पर हमेशा नाज़ रहा था परन्तु आज इस दाव पर हारकर कल्लन ने प्रथम बार जीवन में हार मानी। वह वहाँ से उल्टे ही पैरों लौट लिए। गाँव में आये तो बाईजी उनकी प्रतीक्षा में मुँह लटकाए बैठी थीं। कल्लन ने बाईजी का मुँह ऊपर करते हुए कहा—"अब सचमुच ही जमाना बदल गया। इस नये राज्य में पुलिस की ताकत समाप्त होगई। न्याय संसार से उठता जारहा है। दूसरों का धन लूटलेना और मारलेना ही अब न्याय है। हम लोगों ने अपना शरीर बेचकर भी सांसारिक न्याय की आजतक रक्षा की है। आज वह भी डाँवाडोल हो चुका।"

बाईजी के हृदय पर उस्ताद के इन शब्दों ने पीड़ा की एक रेखा खींचदी। उसके हृदय से एक टीस निकल रही थी। जीवन के इस

काल में उन्हें क्या पता था कि यह सामाजिक क्रांति ही उनके सर्वनाश का कारण बनेगी। उस्ताद बहुत देर तक सोचते रहे परन्तु उन्हें कोई भी उपाय न सूझा। आज रातभर उस्ताद को नींद नहीं आई। उस्ताद की जीवनभर की कमाई इन पहाड़ी जंगलों में बिखरी पड़ी थी। उसके अतिरिक्त उस्ताद के पास और कुछ नहीं था। उस्ताद जीवन भर कमाने के जितने धनी रहे, खर्च करने के लिए दिल उन्होंने उससे भी खुलाहुआ पाया था। छोटे-मोटे हानि-लाभ को उन्होंने जीवन में मूंछों पर ताव देकर ही सहन किया था; परन्तु आज उनका दिल बैठा जा रहा था।

बाईजी की दशा भी अच्छी नहीं थी। उस्ताद कल्लन को उन्होंने जीवन में कभी इतना उदास नहीं देखा था। बाईजी ने उस्ताद की गर्दन में प्यार-भरा बाजू डालकर कहा, "आज हार मानबैठा उस्ताद! अरे! अमीरी का मजा लिया है तो अब गरीबी की भी शान देखेंगे। यह तो सट्टे की बाजी थी। जीवनभर जीतते चले आये। आज हार गये तो क्या हुआ? रुपया गया तो क्या हुआ? इन्हीं लोगों से तो कमाया था। इन्हीं के पास चला गया। इतने दिन ऐश करली, यही क्या कम है?"

कल्लन ने बाईजी के नेत्रों में नेत्र डालकर कहा, "बाई, तूने आज दिल रखलिया। वरना यह दिल आज चकनाचूर होजानेवाला था। रुपये का मुझे रत्ती भर गम नहीं। गम है तो इस बात का है कि दूसरी मधु को मैं मधु के सामने लेजाकर न बिठा सका। मैं लौटकर जब बाजार में निकलूंगा तो मधु मुझे देखकर हँसेगी।"

बाईजी—"ऐसा वह नहीं करेगी उस्ताद! तुम्हारी उस्तादी का मान करती है वह। एक जलन है उसके दिल में और अब केवल मौत ही उस जलन को उसके दिलसे निकालसकती है।"

कल्लन—"वह क्या?"

बाईजी—"वह यह कि उसे धोखा दियागया। उससे कहा गया

कि तुमसे विवाह हो है और बाद में उसे पता चला कि उसे ८००) में खरीदा गया था वेश्या बनाने के लिए, बाजार सजाने के लिए, पैसा कमाने के लिए। उसके जीवन से व्यापार कियागया।"

उस्ताद कल्लन का आज पहिली बार इस कठोर सत्य पर सिर झुकगया और वह एक शब्द भी मुख से न बोलसके। उनके हृदय ने उन्हें धिक्कारा, 'वाहरे उस्ताद! तुम अपने को कला का आचार्य मानते हो और फिर तुमने कला की देवी का यह अपमान करने का साहस किया। अपने पेशे की भी इज्जत न करसका तू उस्ताद! फिर उस्ताद तू किस बात का है? तूने रुपयेवालों के चरण चूम लिए; तूने व्यक्ति को पैसे से खरीद कर पैसे वाले के हाथ बेचदिया। यह कैसी दलाली की रे तूने! तूने नीच कार्य किया।'

उस्ताद कल्लन का हृदय बहुत भारी होउठा, परन्तु तुरन्त वह अपने दाँत किटकिटाकर बोले, "परन्तु यह नहीं हो सकता बाईजी! पंडित की लड़की को यहाँ से चलना ही होगा। मैं बिना उसे लिए दिल्ली नहीं लौट सकता, नहीं लौट सकता।"

बाईजी फिर कुछ नहीं बोलीं और इस प्रकार प्रातःकाल होगया। दूसरे दिन सुबह-ही-सुबह उस्ताद कल्लन अपने उसी पुराने रौब-दौब के साथ गाँव में निकले और गाँव की लड़कियों पर आपने एक दृष्टि डाली। कुछ लोगों को नागवार भी गुजरा परन्तु अधिकांश उस्ताद कल्लन और उसके व्यापार से परिचित थे। उस्ताद कल्लन सीधे पंडित के घर पहुँचे तो वहाँ राजन से उनकी भेंट हुई।

राजन मुस्कराकर बोला—"उस्ताद! इस साल तो खाली ही हाथ लौटना होगा। कल थाने में आपके आने की सूचना पहुँचचुकी है और वहाँ के दीवानजी महाशय, जो आपके मित्र हैं, और जिन्होंने कल आपको चुपके से भगा दिया था, वहाँ से तब्दील करदियेगये हैं। पुलिस आपकी तालाश में है।"

कल्लन—"मेरी तालाश में!" उस्ताद कल्लन ने उछलकर पूछा।

राजन—"जी ! आपकी तालाश में, उस्ताद कल्लन की तालाश में। शायद आपका ही नाम उस्ताद कल्लन है, दिल्ली वाले।"

उस्ताद कल्लन ने ज्यों ही पुलिस का नाम सुना तो उनके होश उड़गये। चौबेजी आये यहाँ छब्बे बनने, दूबे भी न रहे। न कोई नया सौदा हुआ, उधार सब मारा गया और पुलिस पीछे पड़ गई। उस्ताद कल्लन लुट गये, बिल्कुल लुट गये। उन्होंने एक बार राजन को सर से पैर तक देखा, परन्तु बोले एक शब्द भी नहीं। फिर आप भी ज़रा मुस्कराकर बोले—"अच्छा राजा ! तुम ही खुश रहो। हम तो अब चलते हैं तुम्हारी नगरी से लुट-पिटकर।" यह वाक्य उस्ताद कल्लन ने आह भरकर कहे।

राजन के मुख की मुस्कान संशय में विलीन होगई। उसने सहानुभूति के साथ उस्ताद को बुलाकर अपने पास बिठलाया और फिर स्वयँ दुःख-भरे स्वर में पूछा—"कुछ ठेस लगी है ?" उस्ताद का दिल भारी हो आया। आँसू उस्ताद के नेत्रों में नहीं थे परन्तु उनका स्वर काफी भारी था। उन्होंने आदि से अंत तक अपने व्यापार की सारी रामकहानी राजन को सुनाकर कहा, "आज तुमने पहिली बार मुझे और मेरे हौसलों को पस्त कर दिया। अनजान आदमी ! तूने मुझे लूट लिया, बर्बाद करदिया, कहीं का नहीं छोड़ा। तू मेरे जीवन की राह में एक खंदक बनकर आगया।"

राजन गम्भीरतापूर्वक बोला—"उस्ताद, आज कुछ दिल में दर्द हुआ मालूम देता है। तुम कलाकार हो और तुम्हारे आत्मसम्मान को ठेस लगी है। परन्तु आज सोचो, कि तुमने कितने विद्यार्थी कला के अखाड़े में उतारे और उनके हृदयों को अपनी मुट्ठी में लेकर चकनाचूर कर दिया। मानो विधाता ने उन्हें हृदय दिया ही नहीं था। तुमने मानव को यंत्र बनाकर जीवनभर प्रयोग किया है। आज तुम्हें जब यंत्र बनना पड़रहा है तो देखो तुम्हारी क्या दशा है ?"

उस्ताद कल्लन की गर्दन झुकी हुई थी। उस्ताद आज जीवन में

प्रथम बार रोपड़ा । राजन ने उस्ताद को छाती से लगाते हुए कहा—
"उस्ताद रोओ नहीं । तुम्हें रोता देखकर मुझे शर्म आती है । तुमने तो जीवन पर जीवन लुटाये हैं, जीवन पर जीवन खिलाये हैं, मस्त दुनियाँ की बहारें लूटी हैं । अब कुछ दिन दुनियाँ की दर्दभरी आहों में भी तो रहकर देखलो । उनमें भी एक मजा आता है । मीठी-मीठी टीस-सी कलेजे में उठती है और पर-कटे पक्षी की तरह सिसक-सिसककर वहीं दम तोड़देती है । तुमने उसका अनुभव नहीं किया । मुझे विश्वास है कि मधु तुम्हें वह करासकेगी ।"

मधु का नाम राजन के मुख पर आते ही उस्ताद कल्लन हिलउठे । उनका तमाम बदन थर-थर करके काँपने लगा और मूंछों का तनाव ढीला पड़गया । उस्ताद को पसीना आगया और आज उन्हें लगा कि वास्तव में खिजाब लगाकर बालों में यौवन नहीं आसकता, बनावटी दाँतों से गाल तनाव नहीं खासकते और...... ।

उस्ताद कल्लन ने राजन के पैर पकड़लिए । राजन ने कल्लन को सीने से लगालिया । दोनों मौन रहे कुछ देर, फिर उस्ताद चलेगये और राजन ने एकान्त में घर से बाहर निकलकर अपना मधुर राग छेड़ दिया । वह गारहा था कि अचानक उसने पास में किसी झाँई को आते देखा । राजन बोला—"कौन ?"

उस्ताद—"मैं हूं उस्ताद कल्लन ।"

राजन—"कैसे लौटपड़े उस्ताद ?"

उस्ताद—"एक कलाकार के पैर छूने ! पहिले मैंने राजन के पैर छुए थे, अपने विजेता के, अब आया हूं कलाकार गायक के पैर छूने ।" और वह वास्तव में दुबारा राजन के पैरों पर गिरपड़ा । राजन के मधुर स्वर ने उस्ताद को पागल बनादिया । उस्ताद दीन भाव से बोले—
"गायक यहाँ कहाँ जंगल में पड़े अपने मधुर स्वर को इस बियाबान जंगल की पहाड़ियों और वृक्षों से टकराने के लिए पड़े हो । एक बार वहाँ चलो न, जहाँ तुम लोगों के हृदयों में कसक पैदाकरसको ।"

राजन—"पहिले अपने हृदय में तो कसक पैदा करनेयोग्य बन सकूं उस्ताद!"

उस्ताद चुप होकर लौटगये और दूसरे दिन राजन ने सुबह-ही-सुबह देखा कि बाईजी और उस्ताद कल्लन अपना बिस्तरा-बोरिया लिए उनके द्वार पर उपस्थित थे।

राजन ने पूछा, "जारहे हो उस्ताद ?"

उस्ताद बोले, "हाँ!"

राजन—"फिर कब आना होगा इधर ?"

उस्ताद—"शायद फिर कभी नहीं।"

राजन—"उस्ताद निराश हो गये!"

— ८ —

मधु ने नई दिल्ली में एक कोठी मोललेली थी और अब वह सप्ताह में केवल पांच दिन के लिए ही अपने कमरे पर जाती थी। मधु का नाम बाजार में दिन-दूनी और रात चौगुनी ख्याति पाता जारहा था। तमाशबीनों के तो आजकल वह हृदयों पर शासन करती थी। मधु का साम्राज्य था बड़ी-बड़ी शानवालों पर, बड़ी आनवालों पर। बड़े-बड़े सेठ, गद्दी छोड़कर खड़े होजाते थे, बड़े-बड़े विद्वान कुर्सी से उठकर मधु का सम्मान करते थे और बड़े-बड़े लीडर उसे कला की देवी कह कर पुकारते थे। यों चाहे पीठ-पीछे कोई कुछ भी कहता हो, परन्तु मधु के मुखपर किसी का साहस नहीं होता था कि वह, मधु की शान में एक शब्द भी कह सके। मधु की एक मुस्कान में उनके जीवन के समस्त रहस्यों को सोखलेने की क्षमता थी।

मधु अपने दैनिक जीवन में बहुत गम्भीर होचुकी थी और अब उसने व्यर्थ के आदमियों का अनर्गल बातें करने के लिए भी अपने यहाँ आना-जाना बन्द करदिया था। केवल कुछ गिने-चुने व्यक्ति रहगये थे वहाँ आने वाले। कुछ ऐसे भी थे कि जिनसे आर्थिक लाभ बिलकुल नहीं था, परन्तु उनसे मिलकर मधु को प्रसन्नता होती थी और कुछ ऐसेभी थे कि जिनसे आर्थिक लाभ बहुत होने पर भी उनसे बातें करने में उसे आनन्द आता ही नहीं था, घृणा होती थी। कई बार मधु ने अपने स्वभाव को बदलकर उसमें दुनियाँदारी निभाने का प्रयास किया, परन्तु उसे सफलता न मिलसकी! मधुने इसे अपनी व्यापार-कला की कमजोरी अवश्य माना परन्तु जिस चीज पर उसका अधिकार ही नहीं, उसके लिए वह कर भी क्या सकती थी।

मधु के जीवन में प्रसन्नता नहीं थी। वह इस जीवन को चलाने

के लिए एक प्रयत्न कररही थी। मधु एक यंत्र बनचुकी थी। उसमें उत्साह नहीं था, उमंग नहीं थी, जीवन का एक रास्ता बनगया था और उसपर वह आज के पश्चात् कल और कल के पश्चात् परसों की गिनती गिनतीहुई चलीजारही थी। अब मधु के जीवन में एक क्रम आगया था और उसे वह तोड़ना भी नहीं चाहती थी। जीवन की उछृंखल प्रवृत्तियाँ कभी-कभी उसके हृदय और मस्तिष्क को मथ डालना चाहती थीं परन्तु मधु एक मुस्कान भरकर नाचतीहुई उस परेशानी से दूर निकलजाती थी—कलाकार थी वह।

अपनी कोठी के एक कोने में मधु ने भगवान् की मूर्ति स्थापित की थी। उसी कमरे के अन्दर वह एकान्त में जो नृत्य करती थी वह अपने देवता को रिझाने के लिए करती थी परन्तु इसे कोई देख नहीं सकता था। कोठी पर यों आही बहुत कम आदमी पाते थे परन्तु जो आते भी थे उन्हें भी इधर आने की आज्ञा नहीं थी। यह एकान्त मन्दिर का कोना था जिसमें घुसकर मधु पहिले खूब जी भरकर रोती थी और फिर पगली की भाँति खिलखिलाकर हँसदेती थी। वह हँसकर कहती थी—'राजन अवश्य आयगा। उसे आना ही होगा एक दिन। क्या मेरी पायल की झंकार. उसके कानों तक न पहुँचती होगी?' और फिर देवता के पास जाकर उसके कान में कहती, 'देवता! मेरी नृत्य-ध्वनि तुम राजन के कानों तक पहुँचादो। वह स्वयँ दीवाना बना चलाआयगा। वह मतवाला होउठेगा। राजन के हृदय की दबी हुई ज्वाला धक-धक करके जलने लगेगी और वह पागल की तरह क्या न गाउठेगा—अवश्य गाउठेगा वह वही मधुर संगीत कि जिसमें उसने मेरे शब्दोंको बदलकर अपने मधुर कंठसे उस दिन एकान्त में गंगा-किनारे हिमालय की चोटी पर खड़े होकर गाया था।

उसीसमय मधु एक लम्बी निश्वास लेकर पत्थर की मूर्ति के समान अपने उस छोटे से मन्दिर के देवता के सामने घुटने टेककर बैठ गई और धीमे स्वर में बोली—

कितना दुःख जिसे मैं चाहूं
वह कुछ और बनाहो,
मेरा मानस-चित्र खींचना
सुन्दर-सा सपना हो ।

जाग उठी है दारुण ज्वाला
इस अनन्त मधुवन में,
कैसे मुझे कौन कहदेगा
इस नीरव-निर्जन में ।

अन्तरतम की प्यास विफलता
से लिपटी बढ़ती है,
युग – युग की असफलता का
अवलम्बन ले चढ़ती है ।

यह विराग सम्बन्ध हृदय का
कैसी यह मानवता ?
प्राणी को प्राणी के प्रति बस
बची रही निर्ममता ।

गुनगुनाते-गुनगुनाते मधु की आँखों से अश्रुओं की धारा बहचली । उसका गला रुँध गया और वह अपनी अवस्था को भूलकर देवता के सामने मस्तक टेकेहुए न जाने कितनी देर तक उसी प्रकार मौन पड़ी रही ।

बहुत देर पश्चात् जब उसके नेत्र खुले तो वह कमरे से बाहर आई और उसने आश्चर्य के साथ देखा कि उस्ताद कल्लन तथा बाईजी मधु की बैठक में विराजमान थे ।

मधु को देखकर दोनों अपराधियों के समान खड़े होगये । दोनों की गर्दनें झुकीहुई थीं और बोलने के लिए न तो उनके कंठ में स्वर ही

था और न उच्चारण करने की क्षमता ही उनकी जिह्वा में थी।

मधु अपनी स्वाभाविक मुस्कान बिखेरकर उस्तादजी के समाने खड़ी होकर बोली—"उस्तादजी की भूल को मधु ने कभी भूल नहीं गिना। और बाईजी को तो मैंने सर्वदा ही अपनी अम्मा के समान माना है। यदि जीवन में यह भूल मेरे माता-पिता से ही होगई होती तो क्या मेरा उनके प्रति कर्त्तव्य भी समाप्त होजाता?"

मधु बराबर मुस्करारही थी और उस्ताद तथा बाईजीके नेत्रों से अश्रु-धारा बह निकली। उस्ताद कल्लन कुछ देर में अपने को सँभाल कर गिड़गिड़ातेहुए बोले—"मधु! तुम्हारा उस्ताद तुमसे हार मानचुका। यह मेरे जीवन की आखरी कुश्ती थी कि जिसमें तुमने मुझे पछाड़दिया।"

मधु—"ऐसा न समझो उस्तादजी! ऐसा कभी न समझना अपनी मधु से। मधुने आपका अपमान कभी नहीं किया; केवल अपनी रक्षा भर करने का साहस किया है।"

उस्ताद कल्लन चुपचाप खड़ेरहे। अबकीबार तो मानो किसीने उनके होठों को ही सीदिया था और बाईजी की तो समझमें ही नहीं आरहा था कि उन्हें क्या कहनाचाहिए। यों अपने काम की बातें करने में बाईजी का मुकाबला आजतक कोई बाजार में नहीं करसका था, परन्तु जीवन का जो पहलू इस समय उनके सामने था उसकी तो उन्होंने कभी शिक्षा ही नहीं पाई थी।

मधु ने दोनों को सम्मान के साथ सोफों पर बिठलातेहुए कहा—"आज हम लोग सब एक ही मेज पर खाना खायँगे।"

और सचमुच तीनों ने एक साथ ही खानाखाया। बाईजी तथा उस्ताद कल्लन के लौटआने से मधु के जीवन का कुछ मौन समाप्त होगया और जीवन की वह विचलन भी कुछ कम हुई जिसका अनुभव वह एकान्त में कियाकरती थी।

उस्ताद कल्लन चाहे भले ही मधु से रूठकर चलेगये थे

परन्तु उनके हृदय में मधु के लिए स्नेह था, प्यार था और अपनी खोईहुई कला के प्रति लोभ भी था। मधु का एक सफल पैर उठने और घुँघरू की मीठी ध्वनि निकलने से जितना आनन्द सब तमाशबीनों को आता था उतना अकेले उस्ताद कल्लन को आता था। उस्ताद कल्लन के दुबारा बाजार में आने से एक चहल-पहल मचगई और उनके पुराने ग्राहकों ने उस्ताद के पास आकर उनकी मात्रा का सार लेने का प्रयत्न किया।

उस्ताद के पास इतनी भीड़ देखकर मुस्कराते हुए मधु बोली—"महाशय लोगो! जिस वस्तु की खोजमें आपलोग आये हैं वह वस्तु उस्तादजी को प्राप्त नहीं होसको। इसे आप अपना-अपना दुर्भाग्य समझें।" और इतना कहकर मधुने ऐसी दृष्टि से उन व्यक्तियों की ओर देखा कि वह लजाकर शर्मायेसे रहगये। वह चित्रवत् मधुके सम्मुख खड़े थे। मधु और आगे बढ़कर बोली—"आप लोगों की आशाओं पर पानी फिर गया। इस बार बाज़ार ठंडा ही रहा। कोई नया माल बाजारमें उस्ताद ने लाकर नहीं पटका। जब उस्ताद कल्लन जैसे कुशल व्यापारी भी इस वर्ष मालकी खरीद न करके मालकी मण्डी से खाली हाथही लौट आये तो भला साधारणसे व्यापारियोंका तो कहना ही क्या है।"

वह सब मौन थे। मधु मुस्कराती हुई फिर बोली—"यह मनुष्यका व्यापार होरहा है महाशय लोगो! आप लोग इसके भागीदार हैं। समाज के ठेकेदार हैं। आप लोगोंका भी भला कुछ जीवन है? जिस जीवन में सचाई नहीं, छुपकर काम करने की प्रवृत्ति है, उस जीवन से तो मृत्यु भली।"

उस्ताद कल्लनको तो मानो पत्थरका गढ़कर किसीने बिठलादिया था। वह रोपड़े और वास्तवमें उनका रोना सच्चा था। लुटे हुए व्यापारीको मधुने आगे बढ़कर साहसके साथ छूते हुए कहा—"उस्ताद! बस रो उठे। इतनी तनिकसी ठेससे रोउठे। जरा उनका दिलभी तो टटोलकर

देखो कि जिन्हें अपने जवानीके कालमें तुम अपने साथ विवाहकर लाये और फिर उन्हें यहाँ लाकर कोठेपर बिठला दिया। उनके साथ व्यापार किया, उनका शरीर बेचा और उस पैसे से जीवनभर आनन्द मनाया। उस्ताद! ऐश कीं तुमने, शराबें पीं तुमने, अय्याशीकी तुमने और उन कोमल कमनीय बालिकाओं का जीवन चूसलिया, उन्हें समाप्त कर दिया। तुम सुन्दर बालिकाओं को पेलकर उनके जीवनका रस निकालने वाले प्राणहीन कोल्हू बनगये। तुम अपने समाजकी उन्नति न कर सके। उसकी सम्पत्तिको तुमने चन्द चाँदीके टुकड़ों पर दूसरोंके हाथ बेच डाला।"

मधु कहती-कहती एकदम मौन होगई। आज वह संध्याको कमरे पर नहीं जायगी। उसने अपने नौकर को कहदिया और नौकरने मुजरेके समयसे पूर्व कमरे पर पहुँचकर मधुके न आने का बोर्ड लगादिया। आज मुजरा न होसका।

मधुने आज जी भरकर अपने मनकी बौखलाहट को शान्त किया परन्तु उस्ताद कल्लन एक शब्द भी न बोले। फिर अन्त में मधु पगली की तरह उस्तादकी गोदमें जागिरी और उस्तादने मधुको पिताके समान स्नेह से अंकमें भरलिया। बाईजी दौड़कर पानी लाईं और उन्होंने मधुके मुखपर छींटा दिया। मधु को होश आया तो वह बहुत घबराई हुई थी। उसके नेत्र चढ़रहे थे और वह तुरन्त उठकर अपने पूजाके कमरेमें चली गई।

मधुको इस समय होश नहीं था। उसके पैर आप-से-आप नृत्य पर उठनेलगे। घुँघरुओंकी आवाज उस्तादके कानोंमें पड़ी तो उन्होंने तबला उठालिया। तबलेके ठेकेपर मधु इठलाउठी, झूमउठी और न जाने कितनी देरतक नाचतीरही। आज फिर मधुने कितने ही दिन बाद अपने जीवनमें यौवनके दर्शन किये, उत्साहके दर्शन किये, मस्ती देखी और मस्ती का नर्त्तन देखा। यह था मधुकी विजयका नृत्य जो उसके अंग-अंग से फूटा पड़रहा था।

मधु आज बहुत प्रसन्न थी। उसकी चेतन, अवचेतन और अचेतन सभी भावनाएँ तथा मस्तिष्क की क्रियाएँ कार्य कररही थीं। मधुकी यह विजय उस्ताद कल्लन पर नहीं थी बल्कि मजलूमकी जालिम पर विजय थी, मानवता की निर्दय सौदागर पर विजय थी। इस विजयके उत्साह ने मधुके हृदयमें एक चेतनाको जन्म दिया और उसे विश्वास होगया कि वह वेश्या-समाजको भारतीय समाजका वह अंग बनाकर श्वाँस लेगी कि जब समाजका कोई भी व्यक्ति उसे घृणित कहने का साहस न करसके। यदि समाजने अपने इस भाग को अपनी आवश्यकता की पूर्तिके लिए बनाया है तबतो यह वह कार्य है कि जिसके लिए समाज को उसका सम्मान करना चाहिए और यदि यह समाज के अत्याचारों का फल है तो समाजको इसपर घृणा करने का कोई अधिकार ही नहीं; उसे लज्जित होना चाहिए अपनी पशुता पर।

मधुके हृदयने समाजके दृष्टिकोणके विरुद्ध विद्रोह किया और वह अपनी पीड़ाको मस्तिष्कमें ही लेकर अपनेसे बोली—'क्या राजन मेरे इस विद्रोह के आन्दोलन में मेरा साथ देसकता है? क्या मेरे इन मनुष्यताके अधिकारोंको प्राप्त करने के संघर्ष में वह मेरा हाथ अपने कंठमें पहिनकर आगे बढ़सकता है? यदि बढ़सकता है तो वास्तवमें वही मेरा देवता है!'

आज मधु को राजन की आवश्यकता थी, परन्तु वह जा नहीं सकती थी राजन के पास। उसे विश्वास था कि राजन एक दिन अवश्य उससे आकर मिलेगा। मधु जानती थी, राजन दुनियाँ से अनभिज्ञ है। इसी-लिए वह उसे उसकी अनभिज्ञता में ठगना नहीं चाहती थी। परन्तु वह ठग नहीं रही थी। उसके हृदयका विशुद्ध प्रेम उसे राजन की ओर खींचता था और वह बलपूर्वक अपने को रोकने का प्रयास कररही थी। मधुके सम्मुख राजनकी साकार प्रतिमा आकर खड़ी होगई और मधु गुन-गुनाने लगी—

सुख की एक झलक प्राणों को
मिली, वही अभिशाप बनी,
सजन ! तुम्हारी क्षणिक कृपा ही
जीवन का संताप बनी।

छवि-आभा की धवल चाँदनी
खिली, नयन होउठे विभोर,
सिंधु प्यास का उमड़उठा था
जिसका कहीं न मिलता छोर।

किसी दूसरे ही जग में अब
चलीगई छवि की मुस्कान,
चलीगई पर इन प्राणों में
चुभागई किरणों के बाण।

देखा था छवि की आँखों में
स्नेह-सिंधु लहराता-सा,
क्या वह छल-ही-छल करता था
पगली मुझे बनाता-सा ?

देकर पुनः छीनली तुमने
अपनी दिव्य-दया की भीख,
दिये दान को फिर हथियाना,
किसने दी तुमको यह सीख ?

एक घड़ी के लिए हृदय-धन
बने सिंधु के सदृश्य उदार,
दिखा तुम्हारी आँखों में था
मुझे प्यार का पारावार।

किसे पता था मेरी जीवन-
नैया हो जावेगी चूर,
मुझे तुम्हारी यौवन-लहरें
उठा-उठा फेंकेंगी दूर ।

मधु को आज बहुत राततक नींद नहीं आई । मनमें कई बार आया कि वह चुपकेसे उठजाय और उस्ताद कल्लन पर प्राप्त कीहुई अपनी विजय की कहानी राजन को सुनाये । उसके मनमें विश्वास था कि राजन उसके कार्यकी सराहना करेगा, परन्तु डरती थी कि कहीं उसका प्यार एकदम काँचकी तश्तरीकी भाँति भूमिपर गिरकर चूर-चूर न होजाय । उसकी आशाओंकी लहलहाती हुई बगिया ही न उजड़जाय । उसकी कल्पनाका स्वप्न ही समाप्त न होजाय । वह राजनको अपना राजन भी कहकर गर्वके साथ न पुकार सके और विश्वासघातिनके रूपमें उसे राजन के सामने लजाकर न खड़ा होजाना पड़े ।

तब क्या उसे राजनके प्रति भी विद्रोह करनाहोगा ? परन्तु यह वह नहीं करसकेगी । राजन ने ही तो उसे विद्रोहके लिए बल दिया है । उसीसे बल प्राप्त करके वह आज इस गर्व का अनुभव अपने हृदयमें कररही थी । फिर उसी राजनके साथ भला कैसा विद्रोह ? वह नहीं करसकती, नहीं करसकती ! हार मानती है वह राजन से !!

परन्तु मधुके मुख-मंडलपर मुस्कान थी । वह आज प्रसन्न थी । रातभर उसे नींद नहीं आई और वह प्रसन्नता में ही इधर-उधर करवटें बदलती रही ।

समय आगे बढ़ा, और उस्तादजी तथा बाईजीने भी अपने जीवन को बदलने का प्रयास किया । मधुके रूपमें उन्होंने साधना और सौन्दर्य के दर्शन किये । चित्त की शान्ति बनायेरखने के लिए मधुने उन्हें जो कुछ भी कहा उसका उन्होंने पूरी तरह पालनकिया । मधुने अपना कमरा उस्ताद और बाईजी को रहने के लिए देदिया । वह दोनों वहींपर

चलेगये और मधु अपनी कोठीमें अकेली ही रहतीरही।

उस्ताद कल्लन और बाईजी ने आजसे अपने मस्तिष्क की चिंताओं को मधु के हवाले करदिया और मधु को संरक्षण देने की भावना को मन से निकालकर उसका संरक्षण ग्रहण करलिया। मधु अब इन दोनों से बहुत प्रसन्न थी और यह दोनों भी मधु को अपकी पुत्री के समान मानते थे। क्या मजाल थी जो उस्ताद कल्लन के सामने कोई मधुकी ओर आँख भरकर भी देखजाता।

उस्ताद कल्लन का जीवन भी कुछ बदलनेलगा, परन्तु वह शराब पीना न छोड़सके। उस्ताद की शराब का मधु को बड़ा ध्यान रहता था और उनकी सभी आवश्यकताओं को मधु अपने बुजुर्गों की बुराइयों की भाँति निभाती थी।

मधु के जीवन का यह दूसरा दौर था जिसमें वह पानी की नीची सतहसे उभरकर उसके ऊपर की सतह पर आई, परन्तु अभी वह मझधारमें ही थी। किनारा काफ़ी दूर था। वह थकरही थी। उसे आश्रय की आवश्यकता थी। वह राजनका हाथ पकड़कर आगे बढ़नाचाहती थी। राजन इस समय उसका वह स्वप्न था कि जिसे पाकर वह अपनी जीवनकी लुटीहुई निधिको प्राप्त करसकती थी।

राजनका बल पाकर वह एक बार अवश्य संघर्ष करेगी। अपने चरण चूमने वाले विपक्षियों से, विद्रोहियों से, समाज के ठेकेदारों से, मानवता के अधिकारियों से, जो उसकी दृष्टिमें आज मानवता के कलंक थे, पशुता के प्रतीकथे और जिनका जीवन एक विडम्बनामात्र था, कोरा छल, और कुछ नहीं।

— ९ —

राजन शीला के साथ रहता था परन्तु उसकी आत्मा मधु के प्यार से बँधचुकी थी। मधु उसकी कल्पना थी, स्वप्न थी, देवी थी, सब कुछ मधु ही तो थी उसकी। उसके स्वर में मधु का मिठास था। उसकी वाणी में मधु की कसक थी, उसकी मस्ती में मुस्कान थी, थिरकन थी, कम्पन थी। राजन का जीवन ही मधुमय होचुका था और अब वह प्रयास करने पर भी मधु को अपने जीवन से दूर नही करसकता था।

राजन ने उस्ताद कल्लन के चलेजाने पर पहाड़ों के गाँव-गाँव में जाकर समाज की परिस्थित का निरीक्षण किया। गरीब लोगों की दशाओं को देखा और उन परिस्थितियों को समझा कि जिनमें फँसकर लोग अपनी सुकुमार बालिकाओं तक को बेचने पर उतारू होजाते हैं; जान-पूछकर उन्हें उस्ताद कल्लन जैसे दुराचारियों के हवाले करदेते हैं। लजाते नहीं, शर्माते नहीं। अपने पेट और शौक की खातिर ही तो यह सब-कुछ करते हैं। कीड़े बन गये हैं नर्कके और फिर उसपर भी समाज की ठेकेदारी का अभिमान!

राजन के सामने आज अचानक ही पंडितजी महाराज की प्रतिमा आकर खड़ीहोगई और उनके वह शब्द राजन के कानों में जागउठे जब उन्होंने मधु को 'पापिन' कहकर पुकारा था; मानो राजन पर बज्र टूटपड़ा था उन शब्दों को सुनकर, राजन दब गया था उस बज्र के नीचे। मधु वेश्या है, यह सुनकर उसे चक्कर आगया था, उसका मस्तिष्क घूम गया था, परन्तु तुरन्त ही मधु की मुस्कानभरी प्रतिमा के उसे दर्शन हुए और मधु के त्याग ने उसकी आत्मा को उभारकर उस बज्र से ऊपर उठालिया। मधु ने कितना बड़ा त्याग किया राजनके लिए? क्या वह

समाज का उच्चतम प्राणी मस्तक पर चार अंगुल का तिलक चढ़ाने वाला कभी उसकी महानता की छाया को भी छू सकेगा ? इसके तनिक स्पर्शसे अपवित्र होजायगी मधु की छाया भी।

'राजन कमजोर निकला,' राजन ने अपने मन में कहा। वह मधु को न समझसका। मधु ने अपने प्यार पर अपने जीवन का बलिदान चढ़ादिया और नीच पंडित मधु को 'पापिन' कहता है। मधु जैसी न जाने कितनी बालिकाओं को उस्ताद कल्लन जैसे नरपिशाचों के हाथों बेचकर दलाली के टकों पर अपना निर्वाह करने वाला यह उच्च कुलीन ब्राह्मण मधु को 'पापिन' कहता है। राजन को क्रोध आगया और वह पागल की तरह उठकर हवा में चिल्लाते हुए बोला—"नीच ! पापी कहीं के। मेरी आँखों से दूर होजा। नहीं तो तुझे उठाकर जमीन पर पटकदूँगा।"

शीला—"क्या कहरहे हो राजन ? किसपर कुपित होरहेहो ?"

राजन—माथा पकड़कर नीचे बैठ गया। कुछ बोल न सका वह। कुछ कह न सका वह। फिर अचानक उसके बदन में एक सिहरन-सी आई और वह बिना बोले ही घरसे निकलकर चलदिया।

राजन की दशा आजकल अच्छी नहीं थी। जब वह काम करता था तो कई-कई दिन और रात काम ही करतारहता था। और जब बैठजाता था तो फिर कई-कई दिन घर से नहीं निकलता था। शीला राजन की हर प्रकार देखभाल करती थी। राजन उठकर जंगल की ओर चलदिया। शीला से एक शब्द भी न बोला। जब राजन कुछ दूर निकल गया तो शीला उसे देखतीहुई उसके पीछे-पीछे होली।

राजन एकान्त में गंगा के किनारे पर जाकर एक पाषाण-शिला पर बैठगया कुछ देर तक गंगा के जल को ऊपर नीचे उछालता रहा। फिर मीठे स्वर में गुनगुनानाकर गाना प्रारम्भ कर दिया—

विद्रोह करूँ, विद्रोह करूँ,
मानव की जड़ता को तोड़ूँ।

मानव जिसमें पशुसम बिकता
मैं ऐसा जड़ समाज छोड़ूं।

बंधन-विहीन, ममता-विलीन,
मेरा हो मधु-सिंचित समाज,
मैं उसी ज्योति को देखरहा
जिसमें संचित है मुग्ध-लाज।

मधु! कितनी ही तुम दूर रहो,
पर रह न सकोगी दूर प्रिये!
मानवता तुमको खींचरही
खिंचते मेरे भी प्राणप्रिये!

धक्का तुमको देगा समाज,
मैं लगा गले, संघर्ष करूँ;
निर्मित कर अपना नव-समाज
उसमें मानव का प्यार भरूँ।

तुम मधु का चषक उँडेल चलो
हो पायल की रुन-झुन रुन-झुन।
मैं मानवता का मधु पीकर
मस्ती में गाऊँ गीत-श्रमन!

बनकर समाज का विद्रोही
मैं तुमको गले लगालूँगा;
चाहे जितनी बाधा आएँ
सब ठोकर से ठुकरादूँगा।

शीला नें राजनका यह संगीत हृदय थामकर सुना। शीला जान गई कि राजन को मधुसे विमुख नहीं कियाजासकता। उसके हृदय पर आज बहुत गहरी चोट लगी, परन्तु तुरन्त ही उसे ध्यान आया अपनी

अनधिकार चेष्टा पर, अपनी विफलता पर, और वह इस निर्जन वन के एकान्त कोने में एक वृक्ष के तने पर बैठकर रोपड़ी। कुछ देर यहीं पर बैठी रोतीरही और फिर धैर्य धारणकरके वह किसी प्रकार राजन के पास जाकर बोली—"जाने कहाँ-कहाँ खोजती फिररही हूँ तुमको राजन !"

राजन मुस्कराकर बोला—"बड़ी बावली हो शीला ! मुझे क्या करोगी तुम खोजकर ? मैं तुम्हारे काम नहीं आसकूंगा शीला ! जो प्राण एक के हाथों बिकचुका उसके साथ क्या विश्वासघात किया जा सकेगा राजन से ? कहो क्या यही चाहती हो तुम कि तुम्हारा राजन अपनी ही आत्मा के सामने जीवनभर के लिए एक शव बन कर........"

"शीला—विश्वासघात !" शीला बीच ही में बोलपड़ी। "ऐसा न कहो राजन ! यह सबकुछ न कहो।"

राजन—"और नहीं तो क्या कहोगी तुम इसे शीला ! आज इस एकान्त में मैं यदि तुमसे कुछ बातें बहुत स्पष्ट भी कहदूं तो तुम बुरा न मानना शीला ! मैं रूढ़ियों को नहीं मानता और उनके प्रति कुछ जलन-सी पैदा होगई है मेरे हृदय में; परन्तु तुम यह न समझना इसका अर्थ कि मैं पुरानी सभी चीजों को गलत और मूर्खता जानबैठा हूँ। जिन भावनाओं, जिन कल्पनाओं और जीवन के जिन रहस्यों की गुत्थियों को सुलझाने में मानव ने अपनी इतनी पीढ़ियाँ समाप्त की हैं वह सब का सब मूर्खता नहीं होसकता।

"पुरातन के प्रति मेरे हृदय में ममता है, श्रद्धा है, स्नेह है और प्रेम है शीला ! प्रेम सृष्टि के आदिकाल से जैसा चलाआरहा है वह उसी प्रकार चलताचलाजायगा। व्यक्ति यौन-सम्बन्ध अनेकों स्थापित करके भी सबके साथ प्रेम नहीं करसकता। प्रेम का निभाना कठिन है। प्रेम में भी भूख है, परन्तु भूख को भुलाकर ही प्रेम किया जाता है।

"क्या वही तुम भी चाहती हो ? मैंने जो कुछ भी किया है वह जान-बूझकर किया है, अनायास नहीं। फिर तुम ही सोचो; क्या जो कुछ तुम कररही हो वह कभी मुझे और तुम्हें जीवन में शान्ति प्रदान करसकेगा ?"

शीला पत्थरकी शिलाके समान मानो पृथ्वीमें गड़गई, शब्द-विहीन, वाणी-विहीन, मौन, चित्रवत, मूर्तिवत।

राजन उठकर शीला के निकट पहुँचा और उसने शीलाकी चिबुकके नीचे अपनी एक उँगली लगाकर उसके मुखको ऊपर उठातेहुए उसके भीगे नेत्रोंमें गम्भीरता पूर्वक झाँककर कहा—"यह मैंने तुम्हारे लिए नहीं कहा शीला, अपनेलिए कहा है। मैं जानता हूँ कि तुम मुझे प्रेम करती हो और करसकती हो, परन्तु मैं नहीं करसकता। मैं तुम्हारी रक्षा में अपने प्राण देसकता हूं, तुम्हारी सेवा में अपना जीवन लगासकता हूँ, तुम्हें प्रसन्न रखने के लिए अपनत्व को खोसकता हूँ, परन्तु तुम्हें स्त्री के रूप में प्रेम नहीं करसकता। जानती हो क्यों ?"

शीला मौन थी।

राजन—"वह मधु मुझे करनेही नहीं देती। वह डाह नहीं करती तुमसे। वह त्याग की देवी है। यदि उसे यह पता चलजाय कि तुम मुझसे प्रेम करती हो तो यह भी सम्भव है कि वह अपना प्यार लौटा ले, जीवनभर घुल-घुलकर मुस्कराने और मिटजाने के लिए। परन्तु मैं स्वयँ क्या करूं शीला ! मैं करही तो नहीं पाता तुम्हें प्यार।"

शीलाके नेत्रोंसे अश्रुओं की धारा बहनिकली। राजन ने आज प्रथमबार शीलाको सहारा देकर अपने पास खड़ीकरके स्नेह से अपने शरीरके साथ चिपकालिया। शीला न जाने कितनी देरतक एक काठ की पुतलिका के समान राजन से सटी खड़ीरही। फिर दोनों वहीं उसी पत्थर पर बैठगये। राजनने गंगाजल से शीला का मुख धोदिया और फिर अपनी धोती के छोर से उसे पोंछकर बोला—"कैसा चाँदसा मुख निकल आया ?"

फिर बहुत देरतक दोनों वहीं एकान्त में बैठे इधर-उधर की बातें करतेरहे। अन्तमें राजन ने शीलासे कहा—"शीला! मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि तुम महनत और मज़दूरी करके लाओ और मैं बैठकर उसमें से खायाकरूं। क्यों न हम लोग अपने मन्दिरमें ही चलकर रहें? वहाँ के आस-पास के रहनेवाले लोग मुझे बड़ा प्यार करते हैं। जब उन लोगों को मेरे आने की सूचना मिलेगी तो तुम देखोगी कि कितने उतावले होकर वह लोग वहाँ आयेंगे। मेरे और तुम्हारे खाने-पीने की कोई चिन्ता नहीं रहेगी। मैं तुम्हें अपने छोटे से मन्दिर की पुजारिन बना दूंगा।"

शीला—"पुजारिन मैं नहीं बनसकूंगी राजन! परन्तु वहाँ चलने में मुझे कोई ऐतराज़ नहीं है। मुझे जहाँ भी तुम लेचलोगे मैं चलूंगी; मुझे विश्वास है कि तुम मेरा अपमान नहीं होने दोगे।"

राजन—"यह भला किस प्रकार होसकता है शीला? राजन के रहते किसकी यह सामर्थ है कि जो शीला का अपमान करने का साहस भी करसके। तुम्हारे मान की रक्षा करना राजन के जीवन का सर्वदा प्रथम लक्ष बनारहेगा शीला!"

और दूसरे दिन प्रातःकाल ही राजन तथा शीला ने वह गाँव छोड़ दिया। चलते समय गांव के प्रायः सभी लोगों ने राजन से रुकने की प्रार्थना की परन्तु राजन न रुकसका।

मन्दिर सूना पड़ा था, बिलकुल उजाड़। मधु के हाथकी लगाईहुई फुलवाड़ी उजड़गई थी। मधुके हाथके लगाये हुए पौधे सूखगये थे। मधुकी बोईहुई बेलें झुलसगई थीं। मधुके हाथका बनायाहुआ चबूतरा ढहगया था। मधुकी लगाईहुई देवता के चारोंओर पत्थरों की बाड़ समाप्त होगई थी। केवल रहगई थी एक मात्र वह रातकी रानी जिसे राजन और मधु दोनों ने मिलकर लगाया था; परन्तु वह भी कुम्हलारही थी, बल खारही थी और उसकी पत्तियाँ पीली पड़चुकी थीं। प्राण अवश्य अवशेष थे उसमें, परन्तु कितने ही दिन से पानी न मिलने के

कारण वह भी अपने अन्तिम श्वाँस गिनरही थी ।

राजन इस उजाड़ बियाबान में आया तो उसका हृदय विह्वल होउठा और यहाँ की प्रत्येक वस्तु ने उसके हृदय में मधुकी स्मृति को कुरेद-कुरेद कर जगाना प्रारम्भ करदिया । राजनके हृदय में एक टीस पैदा होगई । उसने अपने हृदय की व्यथा को शीलासे छुपाने का प्रयत्न किया, परन्तु शीला को उसे समझने में देर न लगी और वह बहुत गम्भीरता पूर्वक बोली—"राजन ! देखली तुमने अपनी बगिया ! बिना मालीके बगिया की यही दशा होती है । बेचारी मधुको भुलाये आज तुम्हें कितने दिन बीतगये ? जानते हो कि उसकी क्या दशा होगी ?"

शीला की यह बात सुनकर राजन ने शीलाके गम्भीर मुखपर देखते हुए कहा—"शीला ! क्या वास्तव में यहाँकी दशा देखकर तुम्हारे हृदय में मधु के प्रति संवेदना उत्पन्न हुई है ?"

शीला—"नारी-हृदय की भावना का तो शीला से अभी लोप नहीं हुआ है राजन ! शीलाने राजन को अपनाने का प्रयत्न किया अवश्य है; परन्तु मेरा राजन इतना बलवान होसकेगा, यह अनुमानकरना मेरे लिए कठिन था । मानवता की अन्तिम कसौटी पर राजन को कसने का मैंने स्वप्न ही नहीं देखा था । मैं बहरही थी अपनी ही भावना में, कल्पना में, आश्रय-विहीन-सी, नेत्र मूंदकर, मार्ग में आनेवाली बाधाओं को भुलाकर । परन्तु मुझे क्या पता था कि मैं पहाड़ से टकराने जारही हूं, समुद्र की थाह नापने का साहस कररही हूँ । मेरी भूल हुई राजन ! उसकी क्षमा चाहती हूँ ।" और इतना कह, नीचे झुककर शीलाने राजन के पैर पकड़लिए ।

राजनने शीला को उठाकर गलेसे लगाते हुए प्यार से कहा—"शीला ! तुम सचमुच ही बड़ी बावली और भोली लड़की हो । तुम्हारे हृदय की स्वच्छता ने मेरा मन ही मोल लेलिया है । तुम्हारा हृदय वास्तव में वह दर्पण है कि जिसमें अन्तर की भावनाएँ आप-से-आप

निखरकर प्रतिबिम्बित होउठी हैं। आओ, हम दोनों मिलकर मधुके लगाये हुए इस बगीचे को सींचने का प्रयत्न करें। सम्भव है कि इसके सूखेहुए पौदे फिरसे हरे होउठें! मेरा प्यार और तुम्हारी सहानुभूति का बल पाकर क्या इनकी पंखुड़ियाँ एक बार फिरसे न खिलउठेंगी ?"

"अवश्य खिलउठेंगी।" शीलाने विश्वास के साथ कहा और वह तुरन्त दौड़कर झोंपड़ी में रखाहुआ मटका उठालाई। फिर राजनके सामने खड़ीहोकर मुस्करातीहुई बोली—"विलम्ब क्या है ?"

"कुछ नहीं," राजनने कहा।

और दोनों ने मिलकर मधुकी लगाईहुई बगिया को फिर से पानी दे-देकर नहलादिया, भरदिया पूरीतरह उसकी क्यारियों को। चबूतरे को भी शीलाने लीपपोत कर सुथरा करदिया और आज संध्या को जब राजनने अपनी तान छेड़ी तो आस-पासके प्रेमीजन आकर एकत्रित होगये। इस निर्जीव पड़े मन्दिरमें फिर से प्राणोंका संचार हुआ; परन्तु राजनके स्वरमें वह मिठास नहीं था और यहाँ के सभी लोग जो मधुकी पायल की रुनझुन सुनने के आदी होगये थे उनके कानोंमें सरसता का सागर न लहरासका।

संगीत के पश्चात् सभी ने मधुके विषयमें राजनसे पूछा, परन्तु राजनने कोई उत्तर न दिया। वह मुस्करारहा था और मुस्कराता ही रहा; परन्तु उसके हृदय में पीड़ा थी, टीस थी और जो बेचैनी थी उसे परखपाना सरल काम नहीं था। शीला परखती थी उसे और अब उसने राजन को भली प्रकार परखना प्रारम्भ करदिया था।

जब सब लोग चलेगये तो शीलाने राजनसे पूछा—"राजन! आज तुम्हारी तबियत कुछ ठीक नहीं प्रतीत होती। आज तुम्हारे संगीत में वह रस नहीं आसका जो उससमय आता है जब तुम गंगाके किनारे एकान्त में बैठकर मधुकी याद में गायाकरतेहो।"

राजन"—तुम ठीक कहती हो शीला! आज राजन भगवान् की प्रार्थना का गीत भी न गासका। प्रयास उसने गाने का बहुत किया,

परन्तु गला जैसे रुँधा जारहा था और हृदय में असीम पीड़ा थी। मानो कोई कहरहा था, कि मूर्ख जिस भगवान् के सामने तू प्रार्थना कर रहा है इसका भी तो उन्हीं धर्म के पाखंडियों ने अपने पाखंडों की रक्षा के लिए निर्माण किया है जिन्होंने समाज के वर्ग बनाये है; नीच और ऊँच की व्यवस्था की है, मानव को मानव पर सवारी गाँठने का सहारा दिया है और दूसरों के रक्त से होली खेलकर अपने मुखपर मुस्कान खिलाई है।"

शीला—"आज तुम वास्तव में बहुत थकगये हो राजन ! इससे तुम्हारा चित्त स्थिर नहीं है। मैं अभी-अभी नीचे गंगा के किनारे से कुछ बिकने वाले फल लेआई थी। उन्हें खाकर सोरहो। प्रातःकाल उठने पर तुम्हारा मन शान्त होगा, तभी कुछ बातें करसकेंगे।"

और शीलाने राजन को सुलादिया।

दूसरे दिन राजन और शीलाने मिलकर बगिया के पौधों को पानी दिया। चबूतरे को साफकिया और संध्या-समय पूजा का आयोजन किया। यह प्रथा कई दिन तक निरन्तर चलतीरही परन्तु न तो सूखेहुए पौधे ही हरे होसके और न राजन की पूजा में ही सरसता आसकी। वह गाता था परन्तु उसे स्वयँ उसमें रस नहीं आता था। गाता-गाता कभी रुकजाता था और देवता के चरणों को छूकर कहता था—"मेरा स्वर तो मुझसे न छीनो मेरे देवता ! क्या मुझसे सभीकुछ छीनलोगे ? हृदय का रस समाप्त होगया, जीवन की मस्ती जातीरही, उत्साह जाता रहा ; अब केवल स्वर-भर अवशेष है इस निर्जीव प्राणी में। उसी के आधार पर तो जीवन-नौका को किसी प्रकार खेता चलाजारहा हूं। क्या उसे भी छीनलोगेदेवता ?"

सब आश्चर्य-चकित होकर राजन की बात सुनते थे और राजन फिर प्रयास करके गानेलगता था। शीला राजनके सामने जाकर खड़ी होजाती थी तो राजन शीलाको देखते-देखते उसके मुखपर मधुका मुख देखने लगता था और फिर उत्साह में भरकर एक साथ मधुर तथा सरस

स्वर में मस्त होकर नेत्र बन्द करके घण्टों गातारहता था। सभी लोग तब मंत्र-मुग्ध होकर राजन का गायन सुनते थे ।

इधर कई दिनसे राजनका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। उसे ज्वर आरहा था और उसी ज्वरमें उसका शरीर बहुत दुर्बल होगया था। शीला राजन को सँभालकर बिठलाती थी। एक वैद्यके पाससे उसके लिए दवा लाती थी और संध्या-समय उसे पूजाके स्थान पर लेजाकर बिठलाती थी।

आज राजन ने ज्वर में भी जब संध्या का गाना नहीं छोड़ा तो शीला दुखी होकर बोली—"क्या प्राणों को निकालकर फेंकदेने की ही कसम खाली है राजन?"

राजन मुखपर पीड़ा लेकर भी मुस्करादिया।

इसपर शीला की आँखोंसे अश्रु-धारा बह चली और उसने राजन के पैर पकड़तेहुए कहा—"राजन! मेरे लिए न सही, मधुके लिए मैं तुम्हारे प्राणों की भीख माँगती हूं। तुमने उसे एक बार वहाँ आने का वचन दिया था। तुम्हें क्या पता कि वह कितनी उत्सुकता से तुम्हारी बाट जोहरहीहोगी? नारी के हृदय की बात तुम नहीं जानसकोगे राजन!" और इतना कहकर शीला ने राजन के मुखपर आशा-भरी दृष्टि से देखा।

राजन कुछ बोला नहीं। उसने केवल शीला का हाथ अपने हाथमें लेतेहुए कहा—"मैं मधुकी खोज में यदि चलूं तो क्या तुम मेरा साथ दोगी शीला?"

शीला—"परन्तु फिर मधु की इस बगिया को कौन रखायगा? क्या यह पहिले की ही भाँति नहीं उजड़जायगी? फिर क्या अपनी मधुको तुम इसी वीराने में लाकर रखोगे? क्या तुम्हारे बाद मैं इसकी रक्षा नहीं करसकूंगी?"

राजन—"तुम सब कुछ कर सकोगी शीला! परन्तु मैं जा नहीं सकूंगा तुम्हारे बिना। मैं अभी जाना चाहता हूँ। इसी दशा में जाना चाहता हूँ। अन्यथा हो सकता है कि मैं फिर कभी भी न जा

सकूं शीला !"

शीला मौन होगई। उसके मुख से एक शब्द भी न निकलपाया। एक बार उसने राजन के मुखपर देखा और फिर खड़ी होतीहुई बोली, "तो चलो राजन ! इसमें देर का क्या काम है ?"

राजन शीला का सहारा लेकर खड़ाहोगया और किसी प्रकार पगडंडी से होताहुआ नीचे सड़क तक आगया। राजन का शरीर काँप रहा था परन्तु उसके नेत्रों में आनन्द की लहर दौड़रही थी। उसके मनमें मधुकी स्मृति न जाने कितने-कितने रूप धारणकरके बार-बार आती और चलीजाती थी।

शीला ने देखा कि वही राजन, जिसे झोंपड़ी से बाहर चबूतरे तक लाने में उसे कठिनाई होती थी, अब सड़क तक एक बार भी बीचमें बिना किसी पत्थर या पेड़ का सहारालिए शीला के कन्धे पर हाथ रखे धीरे-धीरे चलाआया।

राजन कमजोरी में भी बहुत प्रसन्न था। उसने शीलाके कन्धे पर हाथ रखतेहुए प्यार से कहा—"शीला ! यदि तुम न चाहतीं तो मैं मधुको इस जीवन में नहीं देखसकता था।"

"यह तुमने क्या कहा राजन !" शीला आश्चर्य-चकित होकर बोली।

राजन—"यह मैं बिलकुल सत्य कहरहा हूँ शीला ! यहाँ रहकर ही प्राण देदेता परन्तु तुम्हारे कहेबिना मैं कभीभी मधुके पास नहीं जाता।"

शीला का तमाम बदन एकदम रोमांचित होउठा और उसने जंगल के इस एकान्त कोने में अपना सर्वस्व राजन को समर्पण करतेहुए कहा—"राजन ! तुम्हारी यह कमजोरी जानकर ही आज मैंने उसे कुरेदने का प्रयत्न किया था। क्या मैं नहीं समझचुकी थी इस राज को ? परन्तु जिसे मैं अपना बना ही न सकी, उसे बन्दी बनाकर रखना भी कितनी निर्दयता है ? शीला क्या स्वप्न में भी अपने राजनके प्रति इतनी

निर्दय हो सकेगी ?"

शीला रोरही थी और राजन के भी नेत्र भर आये थे। दोनों आगे बढ़कर सड़क के उसपार पहुँचगये जहाँ से सवारियाँ हृषिकेश के लिए चलती थीं और एक बस का टिकट लेकर दोनों उसमें बैठ गये।

—१०—

मधु ने दिल्ली के वेश्या-समाज में एक क्रान्ति का बीजारोपण किया। एक नवीन सभ्यता को जन्म दिया और पुरुष की विश्रृङ्खल प्रवृत्तियों को बाँधने की ओर सक्रिय कदम बढ़ाया। दिल्ली के वेश्या-जीवन में मधु ने वह मिठास भरने का प्रयत्न किया कि जिसमें पुरुष के जीवन की सूनी प्रवृत्ति एक पल के लिए विश्राम करसके। वह एक भूखे भेड़िये के समान उन भेड़ों के रेवड़ में घुसकर एक को लेभागने का प्रयत्न न करे। वहाँ जाय तो शरमाता, लजाता और मुँह छुपाता हुआ न जाय। वह पुरुष यदि अपने को कहता है तो साहस लेकर वहाँ जाय और देखे उनके जीवन को, जिन्होंने पेट के लिए अपने शरीर को बेचदेना तक स्वीकार करलिया।

पेट और व्यापार की वह धारा है जिसमें सौदागर भी अपने माल के प्रति महरबान नहीं और सौदागर माल के प्रति महरबान हो भी किस प्रकार सकता है? उसे तो वह माल बेचकर टके कमाने होते हैं। माल के प्रति उसका आकर्षण झूठा है, भ्रम है, धोखा है। सर्राफे में सोने की सिल्लियों का व्यापारी भी दाम मिलने पर उन्हें ग्राहक के पल्ले में डाल देता है। नगीने का व्यापारी भी रुपया वसूल करके अपने नगीने को ग्राहक की अंगूठी में जड़कर मुस्कराताहुआ कहता है, 'क्या खूब खिला है आपके हाथ में?' माल व्यापारी का और खिलरहा है ग्राहक की उँगली पर।

उस्ताद कल्लन ने आजतक यही तो किया था। परन्तु आज कल्लन का माल स्वयँ अपना सौदा करने लगा। वह स्वयँ पारखी बन बैठा अपनी कला का। मधु को वह बेच न सका, बिक गया स्वयँ उसके हाथ। मधु को वह धोखा न देसका, धोखा खागया उसके हाथ से।

परन्तु मधु ने धोखा नहीं दिया उसे। उसे स्वयँ उसकी आत्मा ने धोखा दिया। जिस चीज़ को वह अपने व्यापार की कला समझकर कभी रौब से मूँछों पर ताव दियाकरता था उसपर आज उसे शर्म आनेलगी। मस्ती की इठलाती हुई उस्ताद की आजाद नजर आज शरमिंदगी में झुककर ही चलना पसन्द करती थी, दबगई थी वह किसी भार से।

उस्ताद कल्लन आज किसीप्रकार साहसकरके उन चार बालिकाओं के पास गये जिन्हें वह एक दिन मधु के ही समान अपने साथ फेरे डालकर लाये थे और फिर उन्हें एक बार बाजार की नायिका बनाकर सिर पर चढ़ाया था। परन्तु वह जीवन विकसित होने से पहिले ही कुम्हलाने लगा, स्वर मुखरित होने से पहिले ही खरखरा होगया, यौवन उभार आने से पूर्व ही ढलने लगा, उभार आने भी न पाया कि...... आज उनका जीवन इस पृथ्वी पर नर्क के समान था। वह अपना शरीर बेचने के लिए बाजार लगाकर बैठनेपर भी उसमें सफल नहीं होपाती थीं। उनका पेट पहिले से भी अधिक भूखा था, शरीर हर प्रकार से अस्वस्थ था, रहने का स्थान सड़ाहुआ था और जीवन, वह तो मानो कुछ था ही नहीं; उपहास था जीवन का।

कहाँ वह जंगल की मस्त हवा, कहाँ वह पहाड़ों की हरियाली, कहाँ वह प्रकृति की अलौकिक छटा......भूख वहाँ भी थी, भूख यहाँ भी है। वहाँ स्वास्थ्य था, मस्ती थी, जीवन का उभार था, साथ में भूख भी थी और यहाँ...... ?

उस्ताद कल्लन उनके पास जाते पहिले भी थे, परन्तु अपने उसी रौब-दौब के साथ। आज उस्ताद कल्लन का चेहरा उतराहुआ था, मुस्कान नहीं थी होठों पर, मूँछों में वह ऐंठ नहीं थी, नेत्रों में वह जवानी नहीं थी, घुँघराले बालों में वह छल्ले नहीं थे और उनके मल-मल के कुर्ते से इत्र की खुशबू नहीं फूटरही थी। वह निगाहें नहीं थीं, वह चाल नहीं थी, वह जवानी नहीं थी, वह मस्ती नहीं थी।

"बड़े उदास दीखरहे हो उस्तादजी!" एक ने कहा।

"कोई नई चिड़िया नहीं फँसी इसबार ?" दूसरी बोली।

"तभी मुँह उतररहा है।" तीसरी ने कहा।

"दुनियाँ बदलरही है उस्तादजी !" चौथी के मुँह से निकला।

उस्तादजी ने चौथी के मुँह पर देखतेहुए कहा—"वाक़ई दुनियाँ बदलरही है चमेली ! उस्ताद कल्लन का जीवन खत्म होचुका। वह आज उस्ताद नहीं है; मधु का तबलची है।" और इतना कहकर उस्ताद ने एक लम्बी साँस ली।

"मधु का तबलची !" चारों ने कहा और चारों ही खिलखिलाकर जोर से हँसपड़ीं। फिर चारों ही गम्भीर होगईं और पहिली ने एक लम्बी आह भरकर आँखों को आसमान से मिलातेहुए कहा—"यह बात एक दिन तुमने उस्तादजी हमसे भी कही थी।"

"हमसे भी कही थी।" दूसरी ने कहा।

"हमसे भी कही थी।" तीसरी ने कहा।

"हमसे भी कही थी।" चौथी बोली।

"परन्तु यह बात मधु से नहीं कही मैंने। उस समय तुम लोगों से कही थी और बाहर किसी से नहीं कही। तुम लोगों से छल किया था, धोखा दिया था तुम्हें; परन्तु आज तो मैं दुनियाँ से कहने के लिए तय्यार हूं।" और इतना कहकर उस्ताद जी चमेली, गुलाबो, रशीदा और जमना के बीचोंबीच वहीं सामने निकले हुए गन्दे चबूतरे पर उकड़ूं बैठगये।

"आज कुछ नया पाखंड रचकर तो नहीं आयेहो उस्तादजी ! परन्तु अब हमारे पास रहही क्या गया है तुम्हें देने के लिए ? जो था सो हम तुम्हारी भूख की भट्टी में स्वाहा करचुकीं। अब तो यह चाम और हाड़रह गये हैं। यदि इनकी भी आवश्यकता हो तो लेसकते हो इन्हें भी ! आखिर फेरे लिए हैं न तुम्हारे साथ। तुमने चाहे हमें निभाया या न निभाया, परन्तु हमने तो निभाने में कसर नहीं छोड़ी।" चमेली ने कहा।

"समाज की, ऊँचे समाज की, स्त्रियाँ अपने पतियों की सेवा

करती हैं, उनके बाल-बच्चों को पालती हैं, घर का काम-काज करती हैं, परन्तु अपने पतियों के लिए अपना शरीर नहीं बेचतीं। हमने वह भी किया है तुम्हारे लिए उस्तादजी! हमने समाज के नियमों को यहाँतक कि अपनत्व को कुचलडालकर भी पाला है और फिर आज हमही समाज की सबसे घृणित वस्तु हैं। वाह रे! उस्तादजी।" गुलाबो कहकर होठों पर पीड़ालिए मुस्करा दी।

"उस्तादजी!........" रशीदा कुछ कह न सकी। वह चुप होकर उठखड़ीहुई। वह भूखी थी तीन दिन की। गत सप्ताह में वह बीमार थी इसलिए उस सप्ताह राशन के भी पैसे न जुटासकी बेचारी।

"बेचारी इस हफ्ते राशन के पैसे भी नहीं जुटापाई उस्तादजी!" जमना ने दिल में दर्द लेकर कहा।

उस्ताद कल्लन का दिल भरआया। उस्ताद उठकर रशीदा के पास पहुँचे और पीड़ा-भरे स्वर में बोले—"रशीदा! मुझे माफ कर दो। तुम मेरे साथ चलो। लेकिन एक प्रार्थना करता हूँ कि मधु को यह राज़ न बतलाना।"

रशीदा उस्ताद का मुँह देखकर एक पगली की तरह खिलखिला कर हँसपड़ी और फिर शान्त होकरबोली—"इस भूखी और बीमार रशीदा को लेने आयेहो उस्तादजी! और चार दिन बाद आकर दफ़ना आना। अब क्या करोगे इसका तुम? यह अब तुम्हारे काम की नहीं रही।"

आज उस्ताद कल्लन की आँखों में रशीदा ने आँसू देखे। वह तनिक आगे बढ़कर बोली—"रोरहे हो उस्तादजी! यह भला कैसा पागलपन है? मैं दो चार दिन की मेहमान हूं। तुम्हारे हाथों दफनाई जाकर मुझे कितनी खुशी होगी, यह मैं क्या कहूँ?"

एक दिन मैंने क्या-क्या आशाओं के स्वप्न बनाये थे? तुमने कहा था कि यह काम दो-चार दिन करना है, फिर दोनों उस रुपये से ऐश करेंगे। वह चार दिन का काम जीवन भर का रोना बनगया, कब की

तय्यारी करादी उसने। पैर लटका चुकी हूं कब्र में, जरा और सहारा लगादो उस्तादजी ! फिर सब ठीक हो जायगा।" रशीदा की आँखों में आज एक भी आँसू नहीं था।

उस्ताद तनिक गम्भीरहोकर बोले—"रशीदा ! जब मैं जानवर बनकर तुम्हारे पास गया तो तुमने मेरे रास्ते में फूल बिछादिये और आज जब मैं इन्सान बनकर तुम्हारे द्वार पर अपने गुनाहों की क्षमा माँगने आया हूँ तो तुम काँटे बिखराने का प्रयत्न कररही हो। यह कैसी नादानी है रशीदा ! मैं जोकुछ करचुका, वह लौटाया नहीं जा सकता; परन्तु यदि मैं अपने को बदलसका तो मैं इसे ही सब-कुछ मानलूंगा। क्या तुम मेरे इस भले काम में मेरा साथ नहीं दोगी रशीदा ?"

रशीदा माथा पकड़कर बैठगई। उसे चक्कर आगया। उस्ताद कल्लन ने रशीदा को गोद में उठालिया और पास ही जमना की कोठरी में खटिया पर लिटाकर अपने तहमद के छोर से उसका मुँह पोंछा। रशीदा को हवा की और उसे थोड़ी देर में होशआगया। रशीदा चुपचाप उठबैठी।

उस्ताद कल्लन ने ताँगा लिया और वह रशीदा को मधु के उसी कमरे पर लेआया जहाँ एक दिन वह भी मधु बनकर चमक चुकी थी। जबतक वह इस कमरे पर रही, उसका नाम भी मधु ही रहा और जब वह इस कमरे से चलीगई तो स्थान-स्थान के साथ उसके नाम भी बदलते रहे। कल की मधु और आज की रशीदा उस कमरे के जीने पर न चढ़सकी, उसके पुराने जीवन का स्वप्न उसकी आँखों की पुतलियों में खेलगया। वह पुराना हृदय जिसमें मस्ती थी, जीवन का रंगीन पहलू था, जवानी की बहारें थीं, उसके सामने आगया। उसने एक क्षण के लिए अपने मदमातेहुए यौवन को अपने में लौटआते हुए पाया और देखा कि वही सेठ, वही राजे, वही जमींदार, वही कलाकार, वही पत्रकार, वही तमाशबीन उसके सामने फूलों की मालाएँ लिए

मुस्करारहे हैं जिन्होंने अपना सब-कुछ, कुछ दिनों पूर्व इस मधु की भेंट चढ़ाया था। कितने सेठ अपनी जन्मभर की कमाई इस मधु के चरणों पर चढ़ाकर इसके ही द्वार से फटकारेगये, कितने ही राजे अपनी रियासतें बेचकर इस मधु के द्वार से दुतकारेगये और कितने ही......
परन्तु उसने उस्ताद कल्लन के लिए यह सब-कुछ किया। उसके लिए, जिसके साथ इस समाज की दासी ने सात फेरे लिए थे, सब कुछ किया। समाज के नियमों को सिर और आँखों पर चढ़ाया परन्तु आज जब वह गिररही थी तो उसे समाज सहारा न देसका। समाज हँसता था उसके भूखे पेट पर, उसकी परवशता पर, उसकी गिरावट पर।

रशीदा का बदन काँपउठा। उसे लगा मानो यौवन की मस्ती में उसने मानवता को ठुकरादिया था। उस दीवाने जमींदार का जीवन इसी मधु ने तो बर्बाद किया था। वह वीर नवयुवक समाज के नियमों और पाबन्दियों को ठुकराकर इस मधु को भगालेजानाचाहता था परन्तु मधु उस समय उसे उसके पैसे के लिए ठगरही थी। उसकी सारी सम्पत्ति समाप्त कराके उसका कमरे पर चढ़ना भी बन्द करा दिया था इस मधु ने। कहाँ रहगई थी मानवता इसमें ?

रशीदा कमरे पर चढ़ने से पूर्व एक बार रोपड़ी। उस्ताद कल्लन ने रशीदा के नेत्र पूछें और सहारा देकर उसे ऊपर लेगया।

मैंफिल लगी थी और उसके बीच मधु बैठी मुस्करारही थी। उस्ताद कल्लन नहीं आये, इसी से नाच प्रारम्भ होने में देर होरही थी। उस्ताद कल्लन रशीदा को अपने रहने के कमरे में लेगये।

मधु को उस्ताद के आने का पताचला तो वह भी तमाशबीनों से तनिक छुट्टी लेकर इधर आई और उस्ताद कल्लन तथा रशीदा को देखकर बोली'—'कुछ बीमार है बेचारी।"

"जी !" उस्ताद कल्लन ने कहा।

"तो तुम आज इन्हीं की देखभाल करो और मैं......"

परन्तु मधु को बीच में ही रोककर उस्ताद बोले, "नहीं, मैं अभी

आता हूं। तनिक बाईजी को इधर भेजदो।" और मधु चलीगई।

"बाईजी हैं अभी।" रशीदा ने उस्ताद से पूछा।

"हाँ हैं रशीदा, वह भी हैं।"

इतने में बाईजी भी आगईं। रशीदा को देखकर बाईजी के मुख से केवल 'मधु' शब्द निकला और रशीदा ने भी बाईजी को सलाम कहा। बाईजी की देख-रेख में रशीदा को छोड़कर उस्ताद मुजरे में चलेगये। मुजरा समाप्त होने पर मधु ने मुस्कराकर उस्ताद से पूछा—"कौन है यह बेचारी?"

उस्ताद कल्लन कुछ न बोलसके। उनके नेत्रोंसे आँसू बहरहे थे और वह गर्दन नीची करके मधुके सामने अपराधी की तरह खड़ेहोगये। मधु भी कुछ नहीं बोली। वह सीधी उस्ताद को यहीं छोड़कर रशीदा वाले कमरे में पहुँची और लेटी रशीदा के पास बैठकर उसके माथे पर हाथ रखतेहुए बोली—"बुखार है इन्हें बाईजी! उस्ताद से कहो कि किसी डाक्टर को बुला लाएँ और इस बहिन के लिए कुछ खाने-पीने का भी प्रबन्ध करें। यह सब मुझे सुबह ठीक मिलना चाहिए। कल यदि इस बहिन की तबियत ठीक होजाय तो इन्हें मेरे पास मिलाने के लिए अवश्य लाना। यदि तबियत ठीक न हो तो न लाना, मैं स्वयँ संध्या को आकर देखलूंगी।" और इतना कहकर मधुने एक सौ रुपये का नोट बाईजी के हाथ में दे दिया।

चलते समय मधु ने रशीदा को बड़े प्यार के साथ कहा, "बहिन! तुम बहुत शीघ्र स्वस्थ होजाओगी। चिन्ता न करना, मैंने सब प्रबन्ध करदिया है। भगवान् करे तुम बहुत शीघ्र स्वस्थ होजाओ।"

'शायद भगवान् करे' रशीदा ने मन-ही-मन अपने जी में जीना चाहने की इच्छा रखतेहुए कहा। रशीदा मरना नहीं चाहती थी परन्तु उसकी परिस्थितियाँ उसे मृत्यु की ओर घसीटे लिए जारही थीं। मृत्यु की ओर वेग से बहतीहुई सरिता में बहीजाती रशीदा को एक सहारा मिला, एक द्वीप मिला, रशीदा ने ठहरने का प्रयत्न किया और

आशा-भरे नेत्रों में नेत्र डालकर जोर से कहउठी—"शायद भगवान् करे बहिन!"

"भगवान् अवश्य करेगा बहिन! जब इन्सान इन्सान बनकर आपस में व्यवहार करेगा तो भगवान् को सुनना ही होगा रशीदा! भगवान् अवश्य सुनेगा।" और इतना कहकर मधु मुस्कराती हुई वहाँ से चलीगई।

रशीदा दूसरे दिन स्वस्थ परन्तु कमजोर दशा में बाईजी के साथ मधु की कोठी पर गई। मधु ने रशीदा को अपने पास सोफे पर बिठला कर पूछा—"अब कुछ ठीक है न तुम्हारी तबियत?"

रशीदा ने नीची गर्दन करके कहा, "हाँ ठीक है, मधु रानी! तुम देवी हो मधु! तुमने मेरे प्राण बचालिए। कल तीन दिन पश्चात् मैंने खाना खाया था।" और रशीदा के नेत्रों से आँसुओं की धारा बहचली।

मधु रशीदा को अपने पूजाके कमरेमें लेगई। वहाँ लेजाकर मधु ने रशीदा को भगवान् के दर्शन कराये और फिर बहुत ही मीठे तथा प्यार-भरे शब्दों में बोली—"बहिन! इस भगवान् की मूर्ति के सामने मैं तुम्हें बहिन कहकर पुकारती हूँ। तुम विश्वास रखना कि मैं जीवन में सर्वदा तुम्हें बहिन ही मानती रहूँगी। परन्तु मेरे साथ विश्वासघात न करना, मुझसे झूठ न बोलना इस जीवन में।"

रशीदा ने भगवान् की मूर्ति के सम्मुख झूठ न बोलने की शपथ ले ली।

मधु ने रशीदा को अपनी कोठी पर ही रखलिया। बाईजी लौट आईं। उस्ताद कल्लन ने कुछ न कहा। रशीदा ने मधु को सब-कुछ और यह भी बतलादिया कि मधु रानी इस कमरे की पाँचवीं मलिका हैं।

जब यह प्रश्न मधु ने उस्ताद कल्लन से एकान्त में पूछा तो उस्ताद कल्लन ने भी दृढ़तापूर्वक सब स्वीकार करलिया।

मधु आज उस्ताद कल्लन से बहुत प्रसन्न हुई। उस्तादजी के इस सत्य ने उस्तादजी को मधु की नजरों में ऊपर उठादिया और मधु ने उस्तादजी का उभराहुआ जीवन एक छाया के समान अपने सामने खड़ा हुआ पाया।

यह सुनकर मधु खिलखिला कर हँसपड़ी। वह आनन्दविभोर हो उठी और अपनी विजय पर वह पगली के समान भगवान् की मूर्ति के सम्मुख नृत्य करनेलगी। मधु के पैर इस समय कितने हलके होगये थे। तीन घण्टे के मुजरे के पश्चात् जब कि उसे साँस चढ़जाता था, आज वह बिलकुल नहीं थकी, और न जाने कितनी मस्ती में आकर नाचतीरही। उसका यौवन आज उभार खारहा था, उसमें मस्ती थी विजय की, उत्साह था। रशीदा ने मधु का यह नृत्य देखा और अपने हृदय में मधु की विजय का मिठास लेकर वह कुछ क्षणों के लिए अपने जीवन के क्रन्दन को भूलगई, भूलगई जीवन की जलन को, पीड़ा को, और हृदय में उठनेवाली उस टीस को कि जो काँटे के समान हरसमय कसकतीरहती थी।

मधु आज प्रसन्न थी, बहुत प्रसन्न। वह रशीदा से बोली—"अच्छा बहिन! मुझे अभी-अभी मुजरे के लिए तय्यार होना है। लो तुम मुझे तय्यार करने का भार ही अपने ऊपर सँभाललो तो शायद मुझे कुछ और सोचने के लिए समय मिलजाय।"

रशीदा ने यह भार प्रसन्नतापूर्वक अपने ऊपर लेलिया परन्तु उसकी समझ में मधु की बात नहीं आई। वह न समझ सकी कि मधु क्या सोचती है? और आज तो रशीदा को यह पढ़तेहुए कई दिन होगये थे कि मधु कुछ सोचती है। क्या सोचती है यह वह न समझ सकी।

रशीदा ने आज अनुभव किया कि मधु के हृदय में भी एक कसक है। शायद इसे भी किसी ने धोखा दिया है। वेश्या होकर इसने किसी का विश्वास किया है; इसने वेश्या-वृत्ति कोही ठुकरादिया। इसीसे तो

इतना कष्ट होरहा है इसकी आत्मा को। परन्तु फिर तुरन्त ही उसे ध्यान आया कि उसने वेश्या-वृत्ति को न ठुकराकर ही कौनसा स्वाद ले लिया था? परन्तु उसे गर्व था हुआ कि उसे कोई बाहर का व्यक्ति धोखा नहीं देसका। उसने धोखाखाया है अपने ही समाज के व्यक्ति से, अपने ही समाज के उस्ताद से; परन्तु यह बेचारी मधु तो सम्भवतः किसी तमाशबीन से ही धोखा खारही है।

रशीदा के दिल में आया कि वह मधु को समझाये परन्तु उसका साहस न हुआ मधु से बातें करने का। मधु जब मौन होकर अपने कमरे में चलीजाती थी तो उसका आदेश था कोठी के सभी रहनेवाले और रशीदा को भी कि कोई उसके कमरे में प्रवेश न करे। कोई उसका एकान्त भंग न करे।

यह था उसकी साधना का मन्दिर और इसके अन्दर कोई प्रवेश नहीं करसकता था। यहाँ मधु थी और राजन, अन्य कोई नहीं, कोई नहीं। मधु के हृदय में राजन मुस्करारहा था और उसके नेत्रों में राजन की छवि थी। राजन गारहा था जीवन के विजय-गान जिसमें मानवता के अमर संदेश कवि की कल्पना ने भरदिये थे। जीवन का नव-निर्माण जिनसे मुखरित होरहा था। यही प्यार की वह अमर कसौटी थी कि जिसपर उस मानव को एक दिन अवश्य कसना था।

मधु गुनगुना उठी—

खिला मुस्कान अधरों पर
दृगों में भरदई बरसात,
तुम्हारे प्रेम - बन्धन में
बँधी हूँ आज मैं अज्ञात।

जो तुमने छूदिया उर को
हृदय में छेड़दी झंकार,
कसक-सी जो उठी उर में
यही है क्या तुम्हारा प्यार?

सजग है आज भी दिल में
मिलन-की चाँदनी-की रात,
धुला था मुग्ध यौवन से
उभरता स्वर्ण-जैसा गात।

लिए मुस्कान होठों पर
दृगों में तब भी बरसात।
तुम्हारे प्रेम - बन्धन में
बँधी हूँ आज मैं अज्ञात।

मिलन की रात मीठी थी,
विरह भी विष नहीं मुझको;
तुम्हारी याद में साजन!
सिसकना भी मधुर मुझको।

सिसकती हूँ नहीं पर मैं,
विरह से आज लड़ती हूं;
अकेली हूं मगर फिर भी
अनेकों वार करती हूं।

नहीं साहस सहे कोई
जो मेरा आज लघु आघात।
छुपी मुस्कान होठों में,
दृगों में थी सरस बरसात।
तुम्हारे प्रेम - बन्धन में
बंधी जीती हूं मैं अज्ञात।

—११—

राजन शीला को साथ लेकर चलदिया परन्तु उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं था। चलने में पैर लड़खड़ाते थे परन्तु उत्साह था दिल में, अरमानों का सहारा था, जो उसे बल प्रदान कररहा था। शीला ने हरिद्वार पहुँचकर कहा,—"आज हमलोग इससे अधिक सफर नहीं करसकेंगे राजन!"

"क्यों?" उत्सुकता से राजन ने पूछा।

"तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है। दम उखड़रहा है। मोटर के सफर से जो तुम्हें थकान हुई है वह आज यहाँ विश्राम करलेने पर ठीक होजायगी।"

"ऐसा न करो शीला! तुम चलतीचलो और मैं ठीक होताजाऊँगा।" विनम्र भाव से शीला का सहारा लेतेहुए राजन ने कहा।

"ठीक है, परन्तु मैं कोई भी खतरे का काम नहीं करसकती। आपकी दशा में यदि मैं होती तो निश्चित रूप से मैं भी चलने के लिए ही कहती अपने सहारा देनेवाले को। परन्तु यदि आप मेरी दशा में होते तो शायद एक इंच भी न सरकने देते मुझे।" शीला ने राजन को सँभालतेहुए कहा।

राजन के पास कोई उत्तर नहीं था शीला के इन शब्दों का। राजन ने शीला के रूप में त्याग की उस महान् आत्मा के दर्शन किये कि जिसके ठीक विपरीत उसने शीला के पिता पंडितजी के अन्दर स्वार्थ, घृणा और पाप का चाण्डाल छुपा बैठा पाया था।

राजन तनिक आगे बढ़कर एक बड़े बर्गद की ऊपर उठीहुई जड़ पर बैठगया और शीला का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला—"शीला, तुमने वास्तव में मुझपर विजय प्राप्त करली, परन्तु आज विजेता के लिए

राजन के पास है कुछ नहीं, श्रद्धा है केवल, क्या कर सकोगी स्वीकार उसे ? बड़ी कृपा होगी।"

शीला भी राजन के पास उसी वृक्ष के तने पर बैठगई, कुछ बोल न सकी। प्रयास भी किया एक बार परन्तु नेत्र नेत्रों से मिलकर मौन होगया स्वर ।

राजन ने फिर धीरे से कहा—"जिस आत्मा में इतना बड़ा त्याग है, क्या वह देवी मेरा तुच्छ उपहार स्वीकार न करसकेगी ?"

"ना कैसे कहूँ राजन ? कुछ दिया तो सही तुमने। यदि दर्द दिया है तो कुछ और भी मिलगया आज। परन्तु मुझे लजाने का प्रयास न करो बस, यही ठीक है। अपने मन्दिर की देवदासी समझलो शीला को, बस यही मेरी आन्तरिक इच्छा है।"

"देवदासी ! तुम ! क्यों नहीं शीला ! मन्दिर ही तुम्हारा है, पूजा ही तुम्हारी है, राजन भी तुम्हारा है और······मधु भी तुम्हारी है।" इतना कहकर राजन ने शीला का उतरा हुआ चेहरा ऊपर करके विनय-भाव से कहा—"तुम जो कहोगी वही होगा शीला ! और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूं कि जो मैं कहूँगा वही करेगी मधु तुम्हारी।"

"मेरी मधु !" शीला ने कहा और वह फिर तनिक न जाने किस प्रकार मुस्कराउठी। शीला ने अनुभवकिया आज अपने हृदय में कि मानो कोई गारहा है। उसने राजन की ओर देखा और फिर सरलता पूर्वक बोली—"तुम सच कहरहे हो राजन !"

"बिलकुल सच।" राजन ने कहा।

"तब लौटचलो मंदिर को और मैं स्वयँ जाकर मधु को लेआती हूँ।" शीला उत्साह के साथ बोली।

"यह नहीं होगा शीला ! मधु मेरे ही साथ आसकेगी और मुझे भी जानाहोगा एकबार।"

आज दिनभर राजन और शीला ने हरिद्वार में ही विश्राम किया और राजन को शीला का कहना माननापड़ा। शीला संरक्षक थी इस

समय राजन को। संध्या को राजन हरकी पैड़ी के पासवाले पुल से शीला को साथ ले गंगा की बीच धार में बने चबूतरे पर आपहुंचा और वहाँ एक चटाई पर बैठगया।

"दृश्य सुहावना है।" शीला ने कहा।

"तभी तो भारत के कोने-कोने से यात्री यहाँ आते हैं। एक हम हैं कि इतने निकट रहनेपर भी कभी इधर न आसके।" राजन बोला।

"कितना सुहावना समय है, कितनी सुहावनी दुनिया है, कितना प्यार भरा है यहाँ हर नर-नारी के हृदय में?" शीला ने कहा।

राजन मुस्कराउठा और फिर शीला का हाथ अपने हाथ में लेकर बोला, "तुम ऊपर से देखरही हो शीला! किसी का दिल टटोलकर भी तो कभी देखाकरो कि उसमें क्या-क्या भरा है? आग जलरही है आज तो। कितनी महान् पीड़ा है? मिलने की न जाने कितनी आकांक्षाएँ लेकर यह यात्री इधर-उधर घूमरहे हैं।

"तुम जानती नहीं हो शायद, यह सभी लोग यहाँ भगवान् के दर्शन करने के लिए आते हैं। गंगा-माता की गोद में रखीहुई यह हर की पैड़ियाँ देखती नहीं हो कि सीधी स्वर्ग की सोपान हैं।" राजन यह कह कर मुस्करा दिया।

"उपहास कररहे हो राजन!" शीला बोली।

"किसका उपहास करूँ शीला? तुम तो कभी-कभी बड़ी ही बावली बातें करने लगती हो। मैं तुम्हें अभी दिखलादेता हूं कि कितना दर्द भरा है इनके दिलों में।"

और इतना कहकर राजन ने नेत्र बन्द करलिए। कुछ देर धीरे-धीरे गुनगुनाने के पश्चात् एक कँपकपी लेकर संगीत-स्वर राजन के मुख से मुखरित हो उठा—

चल रहा हूँ, पर न मंजिल
प्रेम की आसान,
जानता हूँ दर्द है, पर
गा रहा हूँ गान।

प्यार की महफिल लगाई,
भाग्य में फिर भी तरसना।
वेदना के मृदु थपेड़ों
से हुआ साकार हँसना।

है जलन दिल में, अधर पर
खिलरही मुस्कान।
चलरहा हूँ, पर न मंजिल
प्रेम की आसान।

है मगर विश्वास मन में
वेदना को दलसकूंगा,
प्राप्त करने को तुम्हें मैं
अग्नि-पथ पर चलसकूंगा।

पा तुम्हारा छवि-निमन्त्रण
यात्रा आसान।
चल रहा हूँ, पर न मञ्जिल
प्रेम की आसान।

दर्द जिस दिल ने दिया
उपचार भी वह ही करेगा।
जल रहे उर को प्रणय के
मधुरतम मधु से भरेगा।

आप मुखरित हो उठेंगे
तब हृदय के गान;
चलरहा हूं, पर न मंजिल
प्रेम की आसान ।

राजन गाता-गाता रुककर खड़ाहोगया और शीला के कंधे पर हाथ रखकर बोला—"शीला चलो, देर होरही है। गाड़ी अभी रात को जायगी, यही तो स्टेशनमास्टर ने कहा था।"

भीड़ तितर-बितर होगई और राजन शीला के साथ उस चटाई से उठकर चलदिया। कुछ लोग इन दोनों के पीछे भी लगे परन्तु राजन और शीला ने किसी की ओर दृष्टि नहीं फैलाई। जब कुछ दूर और लोगों ने साथ नहीं छोड़ा तो राजन ने रुककर सब भाइयों की ओर हाथ जोड़ कर कहा, "आप लोग अपने-अपने काम में लगें। मुझे प्रसन्नता हुई कि आपलोगों ने मेरा गाना पसन्द किया। मैं ऐसे ही स्थानों पर जा-जाकर अपने गाने के प्रभाव को आँकाकरता हूँ।" और इतना कहकर वह मुस्करा दिया।

सभी लोग वहीं रुकगये। राजन और शीला दोनों बाजार से निकलकर सीधे स्टेशन के लिए होलिए। उन्हें जाना था दिल्ली, जहाँ का पता मधु ने राजन को दिया था।

शीला को आश्चर्य हुआ कि राजन बिना एक जगह भी मार्ग में बैठे सीधा स्टेशन तक चलाआया। स्टेशन पर पहुँचकर शीला ने राजन को बैंच पर आराम से बिठादिया और अपनी ओढ़नी राजन के नीचे बिछादी।

राजन थकगया था इसलिए तनिक लेटगया और शीला ने हाथ की पंखी से उसे हवा करनी प्रारम्भ करदी। यह पंखी शीला की अपने हाथ की बनाई हुई थी और उसी ताड़ के पत्ते की बनी थी जिसके नीचे रात-रात भर बैठकर राजन और मधु ने प्रेम का अमर-पाठ पढ़ा था।

रात्रि की गाड़ी से चलकर दूसरे दिन राजन और शीला दिल्ली

आगये । रात्रि के सफ़र से राजन की दशा खराब होगई और उसे दिल्ली पहुँचते-पहुँचते बुखार होगया ।

दिल्ली शीला के लिए परदेस था । एक गाँव की अनजान बालिका, जिसके साथ दूसरा साथी बीमार था, दिल्ली में आकर चकित-सी रहगई । राजन भी पहिले कभी शहर नहीं आया था। दिल्ली की तो बात ही क्या थी जब वह इस बार से पूर्व कभी हरिद्वार भी नहीं गया था। वह तो पहाड़ों की ग्रामीण जनता का सेवक था, प्रतिनिधि था जिसने अपनी कमजोरियों को खूब अन्दर से घुस-घुसकर परखा था। अपने समाज के घावों और नासूरों पर ही उसकी दृष्टि गई थी ।

राजन के लिए शीला यात्रियों के ठहरने के स्थान पर अकेली बैठी थी । शीला को पसीना आरहा था परेशानी में । राजन को होश नहीं था । शीला ने पास के नल से पानी लाकर राजन के मुख पर छींटे दिये । राजन सचेत होकर उठबैठा ।

"क्या दिल्ली आगई शीला ?" राजन ने पूछा ।

और शीला रोरही थी । फूट-फूटकर रोरही थी ।

"तुम रोरही हो शीला ? मैं बेहोश होगया था ।" फिर शीला को राजन ने अपने पास को करतेहुए कहा, "शीला तुम मेरे लिए वह कररही हो जो कोई भी सम्भवतः तुम्हारे अतिरिक्त न करसके । परन्तु मैं तुम्हें इसके फलस्वरूप कुछ दे नहीं सकता । दबता जारहा हूँ बरा-बर तुम्हारी दया और सहृदयता से । मुझे दुःखी देखकर तुम्हें रोना आगया । परन्तु तुम यह भी सच जानो शीला कि मैं अभी मर नहीं सकता । मेरा जीवन में अटल विश्वास है और मुझे यह स्पष्ट दीख रहा है कि मुझे कुछ करना है । यदि तुम मेरा साथ दोगी तो संसार तुम्हारी प्रतिभा को देखसकेगा ।"

शीला कुछ न समझसकी परन्तु राजन के शब्दों में मानो भगवान् ने उससे आकर कहदिया कि राजन मर नहीं सकता । शीला में साहस आगया और उसने सहारादेकर राजन को अपने से सटाकर बिठला

लिया।

यहाँ से शीला राजन को लेकर फतहपुरी चाँदनी चौक पर श्री नारायण जी की धर्मशाला में जापहुँची। धर्मशाला के पंडित ने शीला को देखते ही एक अच्छा-सा कमरा खोलदिया। बेचारा बड़ा सहृदय था और जब कभी वह किसी बेचारी स्त्री को कष्ट में देखता था तो उसे उसपर अवश्य रहम आजाता था। दो-चार बार जाकर वह उस स्त्री से उसके दुःख दर्द की भी बातें करआता था।

अभी-अभी राजन को चेत-सा हुआ तो राजन ने शीला को धीरे से पास बुलातेहुए कहा—"शीला, यह शहर है, बड़ा शहर है, यहाँ बड़े-बड़े ठग होते हैं। ऊपर से बातें करने में बहुत मीठे, नाटक करने में बड़े प्रवीण और चाटुकारी तथा चापलूसी से दिल में घुसजाना तो उनके लिए खेल है। इसलिए ध्यान रखना कि किसी पर भी विश्वास न करना। बातें केवल अपने काम की करना, व्यर्थ न बोलना। किसी को यह राज़ न मिलजाय कि हम लोग यहाँ किस लिए आये हैं?"

"ऐसा ही होगा।" शीला ने एक सिपाही के समान उत्तर दिया। और फिर शीला राजन के पास बैठगई; हवा करतीरही। इसी समय धर्मशाला के पंडितजी ने आकर पूछा—"क्या चारपाइयों की आवश्यकता भी होगी आपको?"

"जी! दो भेज दीजिए।" राजन ने उत्तर दिया।

"क्या आपके यहाँ हमें बिस्तर भी मिलसकता है?" शीला ने पूछा।

"मिलता तो नहीं है, परन्तु क्योंकि आप कुछ परेशानी में दीख रही हैं इसलिए हम अवश्य उसका भी प्रबन्ध करदेंगे आपको। परन्तु बिस्तर और चारपाइयों का ॥) रोज देनाहोगा।" पंडितजी बोले।

"आठ आना रोज!" आश्चर्य से शीला ने पूछा।

"जी हाँ, आठ आना रोज, केवल आठ ही आना रोज। आपसे है यह रेट नहीं तो बहिनजी, बारह आना से कम नहीं लेते हम।"

"तो यह सब चीजें भी यहाँ किराये पर चलती हैं।" राजन ने पूछा।

"सरकार यह शहर है। यहाँ क्या चीज किराये पर नहीं चलती?" और इतना कहकर पंडित ने तनिक अपनी मूंछों पर ताव दिया।

राजन ने इससे अधिक बातें पंडित से करनी पसन्द नहीं कीं और वह समझगया कि यह पंडित आवारा है। उसने शीला को दोबारा पास बुलाकर कहा, "शीला, इधर-उधर तनिक भी न जाना। यह पंडित आवारा है। इससे कुछ बातें करने की आवश्यकता नहीं है। अपने किसी सहयोग के लिए इससे तुम बातचीत न करबैठना।"

शीला ने राजन की बात को गाँठ बाँधली और पंडित से बातें करना तो क्या उसकी ओर देखना भी बंद करदिया। संध्या तक कई बार पंडित इधर कमरे की ओर आया परन्तु शीला ने उधर नहीं देखा। बेचारे को मन मारकर ही यहाँ से लौटजानापड़ा।

पंडित बड़े रंगीन आदमी थे। यों तो कहने को वह धर्मशाला के पंडित थे, परन्तु उनके इधर-उधर व्यापार न जाने छोटे-मोटे कितने फैले हुए थे। धर्मशाला में खाटें तथा बिस्तर इत्यादि की सप्लाई करने का जैसे इनका एक छोटा-सा व्यापार था उसी प्रकार यह दिल्ली के नामी-ग्रामी व्यापारियों में भी अपना विशेष स्थान रखते थे।

बड़े-बड़े व्यापारियों के तो दलाल भी हजारों की असामी बनजाते हैं। पंडितजी उस्ताद कल्लन के जिगरी दोस्त थे। एक साथ, एक मेज पर बैठकर उन्होंने न जाने जीवन में कितनीबार एक दूसरे का जीवन पान न किया होगा और मदिरा को साक्षी रखकर सच्चे हृदय से एक दूसरे का साथी रहने की कसम न खाई होगी।

परन्तु इधर काफी दिन से उस्ताद का यह व्यापार ठप्प सा हो गया था और इसीलिए आजकल पंडितजी का उस्ताद से मेल-जोल भी कम ही होता था।

आज अचानक पंडित को उस्ताद कल्लन की याद आगई। संध्या समय बारीक धोती पर बारीक चिकन का कुर्त्ता और पैरों में पेटेन्ट लैदर

का जूता पहिनकर पंडित जी जरा कुर्त्ते की बाँहों से इत्र लगाकर तय्यार होगये। इत्र का एक फोहा कान में भी रखलिया।

धर्मशाला से निकलकर सीधे फतहपुरी पर आगये और वहाँ एक फूलमालावाले से चार मोतिये की मालाएँ लेकर अपने हाथ में पिरोह लीं।

मधु के आने का समाचार सुनकर पंडित को बहुत प्रसन्नता हुई थी, परन्तु उसके बाद सब क्या कुछ हुआ यह उन्हें पता नहीं था। पंडितजी खरामा-खरामा खारी बावली पार करतेहुए बर्न बस्टन रोड पर पहुँच गये।

सामने था मधु का जगमगाता हुआ कमरा और उसे देखकर पंडित के होश उड़गये। कुछ देर तक उन्हें विश्वास न होसका कि क्या वास्तव में यही मधु का कमरा था।

विचित्र बात थी यह इस बाजार की। जितनी भी वेश्याओं के कमरे थे उनके जीनों पर बत्तियाँ नहीं थीं। तामाशबीनों का यहाँ आकर तमाशबीनी करने को तो मन होता था परन्तु चाहते थे सब एक दूसरे से अपने को छुपाना। मानव की कितनी महान् कमजोरी थी यह।

मधु ने इस कमजोरी को अपने पहलू से उठाकर दूर फेंक दिया और अपने कमरे के जीने में तथा उसके सामने एक बड़ी बत्ती लगा दी। इस बत्ती की रोशनी में पंडित ने देखा न जाने कितनी कारें खड़ी हुई थीं। इतनी कारें उसने कभी भी इस कमरे के नीचे खड़ी, गत पन्द्रह वर्ष के जीवन में, नहीं देखी थीं।

पंडित ने चमेली, गुलाबो, रशीदा और जमना के भी जमाने देखे थे परन्तु यह साजबाज ही नहीं था। ऊपर चढ़कर तो उनके होश ही गुम होगये। दोनों कमरों को मिलाकर एक बड़ा हाल बनादियागया था और उसी में एक ओर ऊँचे स्थान पर साजिन्दों के लिए बैठने की बड़ी चौकी पड़ी थी।

मधु का स्थान सभा के मध्य में था। मधु सबके बीच में खड़ी

मुस्करारही थी। नृत्य का समय होगया था और तभी उस्तादजी ने तबले पर ठेका दिया। साजिन्दों ने एक साथ मिलकर मीठा स्वर निकाला और मधु के पैरों की नसें फड़कने लगीं। घुँघरुओं में स्वर बँधा और पैरों की गति बढ़नेलगी।

पंडित जूतों के ही पास बैठगये क्योंकि उसमें साहस नहीं था उस्तादजी के पासतक इस समय जाने का। आखिर बड़े व्यापारी थे और उनकी दया से पंडित को हजारों रुपयों का जीवन में लाभ होचुका था।

पंडित उस्तादजी को कला का देवता मानता था और जानता था कि जिस पत्थर पर उस्तादजी की नजर फिरगई तो वह हीरा हो गया।

क्या शानदार मैफिल थी? मधु ने नृत्य प्रारम्भ किया तो क्या मजाल कि एक शब्द भी कहीं से सुनाई दे? शान्त वातावरण में नृत्य का समय बँधरहा था और दर्शक लोग एकाग्र होकर मानो उस देवी की आराधना में अपने को भुलाचुके थे, वास्तव में कला के पुजारी थे वह और सभ्यता उन्हें मधु ने सिखादी थी।

मधु ने आज नृत्य से जादू करदिया अपने दर्शकों पर और दर्शकों ने भी आज अनुभव किया कि वास्तव में मधु का आज का नृत्य कुछ विचित्र ही था।

इधर दो दिन से मधु सो नहीं सकी थी। जब थक जाती थी तो बैठजाती थी, नहीं तो नाचती ही रहती थी पिछले दो दिन से। पागल होगई है वह, यह भी किसी ने कान में धीरे से कहा।

परन्तु मधु मुस्कराकर सुनते हुए बोली—"डरें नहीं आपलोग। मधु को परखनेवाले की खोज कररही हूँ मैं। आपलोग नहीं जान सकेंगे कि मेरे इस अटूट नृत्य में कितनी व्यापक खोज छुपीहुई है। मैं जिसे बुलाना चाहती हूँ वह अवश्य आयगा।"

नृत्य बन्द होगया और मधु बराबर के कमरे में सहारा देकर लेजाई गई। वहाँ पहुँचते ही रशीदाऔर बाईजी ने सबको बाहर निकालदिया।

सभा का समय ही विचित्र बनगया। कुछ प्रेमी लोग ठहरे भी रहे परन्तु पंडितजी चलदिये।

उस्ताद से बातें न होसकीं। मन का रहस्य मन ही में छुपा रह गया। आज पंडितजी भारी पैर लेकर धर्मशाला को लौटे और उन्हें भय था कि कहीं आज के पश्चात् कल पंछी देखना भी नसीब न हो सके। परन्तु उन्हें विश्वास था अपनी योग्यता पर कि जिसे उन्होंने एक बार नजरों में बाँधलिया वह उनसे बचकर दिल्ली में खो नहीं सकता। उनकी नजरों में चित्रित हो चुका उसका चित्र।

पंडित एक बार धर्मशाला के पास तक आगये परन्तु उन्हें फिर न जाने क्या ध्यान आया कि वह वहीं से लौटलिए। वह फिर मधु के कमरे पर पहुँचे तो मधु पूर्व की भांति नृत्य में रत थी और दर्शक इस अलौकिक नृत्य को देखरहे थे। अखंड नृत्य था यह अपने देवता के चरणों में जिसे दर्शकलोग कला की अनूठी देन मानकर नेत्रों में भर रहे थे, भररहे थे कानों में मधु के पैरों में बँधे घुँघरुओं की स्वरमय ताल को।

—१२—

दिनभर आराम करने के पश्चात् राजन का चित्त इससमय बहुत प्रसन्न था। शीला धर्मशाला के बाहर से एक चायवाले को बुलालाई और दोनों ने साथ बैठकर दो गिलास चाय पी। चायपीकर राजन का और भी कुछ थकान दूर हुआ और बदन में स्फूर्ति भी आई।

सूर्य देवता पश्चिम् में पहुँचचुके थे। समय सुहावना होचला था। बिजली के प्रकाश से धर्मशाला और उसके बाहर का बाज़ार झम-झमा उठा था। राजन बोला—"शीला, सारादिन यहीं पड़े-पड़े गुज़ार दिया। चलो अब खोज करलें न मधु की!"

शीला—"आज बहुत थकरहे हो राजन! मेरे विचार से आज आराम करो। खोजके लिए तो हमलोग यहाँ आये ही हैं।"

राजन—"नहीं शीला, नहीं। मेरा स्वास्थ्य इस समय बिलकुल ठीक है। यदि मैं इसी प्रकार यहाँ पड़ारहा तो निश्चय ही रात्रि में बीमार पड़जाऊँगा। तुम मेरा कहा मानो, मैं ठीक-ठीक चलसकूँगा तुम्हारा सहारा लेकर।"

शीला कुछ न बोली और तुरन्त चलने के लिए तय्यार होगई। राजन भी शीला का सहारा लेकर खड़ाहोगया। फिर दोनों धर्मशाला से बाहर निकलकर फतहपुरी के चौराहे पर पहुँचगये। इतनी भीड़ राजन और शीला ने जीवन में प्रथम बार देखी थी, सुनी अवश्य थी कई बार।

शीला बाजारकी यह रौनक देखकर चमत्कृत होउठी और राजन का हाथ पकड़कर हिलाते हुए बोली—"बड़ी अच्छी लगरही है दिल्ली राजन! इसमें एकबार रहकर मधु भला तुम्हारे पास जंगलों में रहने के लिए कहाँ जायगी? स्वप्न के पीछे दौड़ रहे हो राजन!"

राजन—"स्वप्न ही सही शीला! परन्तु एक बार यह जान भी तो सकूं कि स्वप्न में प्राण डाल देनेकी क्षमता राजन में नहीं है।"

शीला मौन होगई राजन के यह शब्द सुनकर। राजन के हृदय का दृढ़ विश्वास अटल था, अटूट था। शीला बाज़ार की सौंदर्य-निधि अपने नेत्रों के खज़ाने में भरतीहुई राजन के साथ इठलाकर आगे बढ़ रही थी। राजन ने देखा कि शीला की इसचाल में एकमस्ती थी, शीला की चाल में उभार था और वह व्यापक वेदना जिसे वह कई मास से उसके अन्दर अनुभव कर रहा था इस समय न तो उसके अधरों परथी, न नेत्रों में थी और न ही मुख मण्डल पर थी।

राजन मुस्कराकर बोला—"शीला, आज तुम्हारी चाल में एक विचित्र आकर्षण है। मस्ती यदि इसे मैं कहदूँ तो लजाना नहीं।"

शीला—"होगी।" लापरवाही के साथ बोली और वास्तव में वह लजाई नहीं।

राजन—"होगी नहीं, है शीला! आज तुम्हारी चाल में मैं वही यौवन का विकास देखरहा हूँ जो एक दिन मैंने गंगा से गगरी भरकर लातेहुए प्रथम बार देखा था। उस समय तुम मुझसे अपरिचित थीं। आज भी शायद उस अपरिचय की झलक तुम्हें कहीं से मिलगई है।"

"ऐसा न कहो राजन!" आँखें तरेरकर शीला बोली। "अपरिचय अब इस जीवन में होना असम्भव है परन्तु यह वह परिचय है कि जो अपरिचय के ही तुल्य है। जिसे मैं पा न सकी, मैं समझती हूँ कि अयोग्य ही हूँ मैं उसके।" और इतना कहकर शीला ने अपनी मधुर मुस्कान राजन के नेत्रों पर बिखेरदी।

आज प्रथमबार आँखें चार होनेपर राजन और शीला ने आनन्दका अनुभव किया, मिठासका अनुभव किया और कसक की छाया आप-से-आप विलीन होगई। राजन के हृदय में बसनेवाली एक व्यापक व्यथा से आज उसे मुक्ति मिली और उसे लगा कि मानो उसके सिरपर रखा हुआ एक भारी वज़न उतरगया। उसका अपना बदन उसे फूल-सा

प्रतीत हुआ और वह उत्साह में भरकर बोला, "शीला मुझे दीखता है कि अब जीवन में मुझे और मधु को देवता की पूजा छोड़कर तुम्हारी ही पूजा करनीहोगी।"

"तो क्या मुझे पत्थर मानलिया है तुमने राजन !" मुस्कराकर शीला ने पूछा।

"ऐसा न कहो शीला ! तुम्हें पत्थर कहना कितनी बड़ी मूर्खता है यह बात राजन से छुपी नहीं है। क्या राजन आज तुम्हारी दृष्टि में अपनी शीला को भी परखने के अयोग्य होगया ?"

शीला फिर कुछ न बोली परन्तु आज वह बहुत प्रसन्न थी।

राजन ने एक आदमी से फतहपुरीपर पहुँचकर बर्नबैस्टन रोड का पता पूछा तो वह मुस्कराने लगा। मुस्कराने के कारण से राजन अनभिज्ञ नहीं था। राजन सब-कुछ जानकर भी अनजान बनगया।

आदमी—"नईंचावड़ी कहो भय्या ! नईंचावड़ी। हो तो कुछ बीमार से ही, परन्तु शौकीन काफ़ी मालूम देते हो।"

शीला—"अजी बहुत, क्या पूछते हैं आप इनकी शौकीनी की बात ?"

शीला ने इतनी बात कही तो महाशय लजागये और यह भी समझे कि शायद यह उन्हें बनाने के लिए ही सबकुछ पूछरहे हैं। परन्तु राजन ने जब दुबारा उसी गम्भीरतापूर्वक पूछा तो उन महाशय ने ठीक-ठीक पता बतलादिया।

राजन और शीला खारीबावली में होतेहुए आगे बढ़चले। राजन के पैर आप-से-आप आगे बढ़रहे थे। उसे ऐसा मालूम देरहा था कि मानो बदन से तमाम रोग न जाने कहाँकाफूर होगया था। परन्तु हृदय की धड़कन बराबर बढ़ती जारही थी। बहुत धीरे-धीरे वह शीला का सहारा लेकर आगे बढ़रहा था।

शीला जारही थी राजन के साथ, कहाँ जारही थी, इसका उसे कुछ पतानहीं। दिल्ली के बाज़ार की रंगीनियाँ उसके सम्मुख थीं और

उसने इस बाजार में विचित्र-विचित्र प्रकार के आदमी देखे। थोड़ी ही देर में उसके सामने से साड़ीवाली, सिलवार वाली, लहँगेवाली, घाघरेवाली, सिंधी पायजामेवाली न जाने कितनी स्त्रियाँ निकलगईं; और आदमियों के रूपरंग का तो कुछ ठिकाना ही नहीं था। शीला यह देखकर जोर से खिलखिलाकर हँसपड़ी।

राजन ने मुस्कराकर पूछा—"क्यों, हँस क्यों रही हो शीला? इतने जोर से हथेली बजाकर शहर के बाजार में नहीं हँसाजाता। देख नहीं रही हो और लोग किस प्रकार अपनी-अपनी राह पर जारहे हैं।"

शीला तनिक शरमागई। उसने अपनी स्वच्छंदता को दबातेहुए कहा—"परन्तु राजन, यह दिल्ली क्या है, अच्छाखासा अजायबघर है। सुना है अजायबघर में बहुत-सी तरह के जानवर रहते हैं। सो कुछ-कुछ वैसी-ही यहाँ की भी दशा है।"

राजन—"दिल्ली हमारे देश की राजधानी है शीला! यहाँ सभी देशों और प्रदेशों के आदमी रहते हैं। सबके रहन-सहन, बोल-चाल, रीति-रिवाज, चाल-ढाल, ओढ़ना-पहिनना पृथक-पृथक हैं।"

शीला—"यही तो मैं भी कहरही हूँ राजन! कि यहाँ का सब कुछ बड़ा विचित्र है। परन्तु मेरा तो इस भीड़-भाड़ को देखकर दम-सा घुटता है राजन! अभी जब धर्मशाला से निकलकर इस चमाचम पर मेरी दृष्टि गई थी तो मन मानो खिंचगया था इस ओर; परन्तु अब इस भीड़ में चलना इतना सुहावना प्रतीत नहीं होरहा।"

राजन—"बस! जाता रहा दिल्ली का शौक। अभी तुमने देखा ही क्या है दिल्ली में शीला! मधु दिखलायगी तुम्हें।"

शीला मुस्करादी और फिर अपनी नेत्रों की पुतलियों को इधर-उधर घुमातीहुई वह मस्तीके साथ आगेबढ़ी। राजन भी इस समय प्रसन्न था। एक आशा थी उसके हृदय में। एक उमंग थी और थी मधु के दर्शनों की प्रबल आकांक्षा जिसने इस निर्बल प्राणी की हड्डियों में न जाने इस समय कहाँ से बल भरदिया था।

खारीबावली पार करने के पश्चात् एक चौरस्ता आगया जहाँ से चारों ओर को सड़कें जाती थीं। यों बतला तो फ़तहपुरी पर ही आदमी ने राजन को दिया था कि चौरस्ते पर पहुँचकर उसे बाँए हाथ को घूमना है, परन्तु फिर भी राजन ने यहाँ एक आदमी से उसका निश्चय किया।

राजन के पूछनेपर हर व्यक्ति मुस्कराया; परन्तु राजन उनके मुस्कराने का कारण जानते हुए भी गम्भीर ही बना था, मानो कुछ जानता ही नहीं। एक भोलाभाला पहाड़ी था, जिसके पास कोई बुद्धि नहीं। इस व्यक्ति को, जिससे उसने अभी-अभी इस सड़क का नाम लिया, राजन पर दया आगई। आदमी भला था इसीलिए पता बतलाने पर भी पूछ बैठा—"भय्या कहाँ के रहनेवाले हो?"

"पहाड़ के।" राजन ने कहा।

"परन्तु इस गन्दे बाज़ार में क्यों जारहे हो?" सहृदयतापूर्वक उसने पूछा।

"गन्दी जगह आदमी या तो गन्दगी को दूरकरने जाता है महाशय! या गन्दगी में फँसने के लिए। मैं इनमें से किसलिए जा रहा हूँ, यह मैं इस समय स्वयँ नहीं जानता।" और इतना कहकर राजन पास में पड़ी लकड़ी की बेंच देखकर बोला—"क्या मैं एक क्षण के लिए आपकी बेंच पर बैठसकता हूं?"

"क्यों नहीं भय्या! अवश्य बैठजाओ।" और इतना कहकर उस व्यक्ति ने राजन को स्वयँ सहारा देकर बिठलादिया। यह चायवाला था। एक छोटी-सी दूकान क्या थी, योंही बनाली थी मोड़ पर,और उसी के पीछे एक छपरी पड़ी थी।

"आप रहते भी यहीं हैं।" राजन ने उन महाशय से पूछा।

"हाँ भय्या! अब तो यहीं रहता हूं।" और इतना कहकर एक लम्बी साँस ली।

"राजन चाय पीलो, तुम थकगये हो।" शीला ने पास में बैठते हुए कहा। और यहीं पर बैठकर राजन ने चाय पी। थक वह वास्तव

में गया था; परन्तु आज न जाने कैसा उन्माद-सा था उसमें कि वह उसे महसूस बिलकुल नहीं कररहा था।

चायवाले महाशय ने कुछ और भी पूछना चाहा, परन्तु राजन मुस्करा दिया और फिर मधुर स्वर में बोला—"भय्या! तुम भी दुखी मालूम देते हो। इसीलिए मेरा कष्ट देखकर तुम्हें दुःख हुआ। तुमने मेरे दर्द से सहानुभूति प्रकट की, इसकी मुझे हार्दिक प्रसन्नता है। परन्तु इस समय मैं आपसे न बतला सकूंगा अपने हृदय की व्यापक-पीड़ा को।"

और इतना कहकर राजन उठखड़ाहुआ। चलते समय राजन ने चाय वाले को चाय का पैसा देने का लाख प्रयास किया परन्तु उसने न लिए और न जाने क्यों उसकी आँखों में आँसू आगये।

राजन चायवाले को रोते देखकर स्तम्भित-सा रहगया और फिर एक क्षण के लिए उसी बेंच पर बैठकर पूछा, "तुम क्यों रोरहे हो भय्या?"

"कुछ नहीं।" आँखें पोंछते हुए चायवाले ने कहा।

"नहीं, मैं अब तुम से रोने का कारण पूछे बिना न जासकूंगा भय्या! मैं बहुत कमजोर हूँ और अभी मुझे बहुत काम करना है। कृपया बतलादो रोने का कारण।"

"हाँ-हाँ बतला दीजिए न महाशय! यह बहुत बीमार हैं। और बहुत ही भावुक भी हैं यह। यदि आप न बतलाएँगे तो इनकी दशा खराब हो जायगी।" स्वाभाविक सरलता के साथ शीला ने कहा।

और चायवाले महाशय ने अपनी दर्दभरी कहानी सुनाडाली। उसका एक बेटा था, जिसकी शक्ल ठीक राजन से मिलती थी। वह आज इस संसार में नहीं था। लाहौर से जिस समय वह अपने परिवार को लेकरचला तो मार्ग में गुण्डों की मुठभेड़ में उसका प्राणान्त होगया। आज अचानक राजन को देखकर उसे अपने बेटे की स्मृति होआई। इसीलिए उसका हृदय भारी होउठा।

चलते समय राजन ने मुस्कराकर कहा—"आप मुझे ही अपना

पुत्र मान लें। इस समय मैं जारहा हूँ परन्तु यहाँ से चलने से पूर्व आपके एक बार दर्शन अवश्य करूँगा।"

इतना कहकर राजन शीला को लेकर आगेबढ़ा।

अब वह उसी बाजार में आगया जहाँ उसे आना था। बड़ा बाजार कुछ विशेष नहीं था। सड़क पर अंधकार-सा ही था। राजन जानता था कि यहाँ बड़ी ही सतर्कता के साथ मधु का पता लगाना होगा, परन्तु इसमें उसे तनिक भी कठिनाई नहीं हुई। बाजार के दाँई ओर कोई मकान ही नहीं था। सीधी यहाँ से वहाँ तक रेल की पटरी बिछी थी। मकान केवल बांई ओर थे जिनके जीनों पर अंधकार होने पर भी चहल-पहल थी। छोटे-छोटे चाय के होटलों और पानवालों की यहाँ कमी नहीं थी। शेष सब-का-सब बाजार बन्द पड़ा था।

राजन सड़क के दूसरे किनारे पर जहाँ शाज़ोनादिर ही कोई आदमी दिखलाई देता था शीला का हाथ अपने हाथ में लिए धीरे-धीरे आगे बढ़रहा था।

"यह कैसा बाजार है राजन ?" शीला ने आश्चर्य प्रकट करते हुए पूछा।

"सभी बाजारों में एक-सी चहल-पहल नहीं होती शीला! देख नहीं रहीहो कि सब दूकानें बन्द हैं। यह दिन में खुलती होंगी। छुड़ी-छीदी कुछ होटल इत्यादि की दुकानें खुलीहुई हैं।" राजन ने बात को दबातेहुए कहा।

शीला की दृष्टि फिर मकानों के कोठों पर गई तो यहाँ उसने बालों में फूलों के गुच्छे लगाये, मस्ती में नयन घुमाती हुई कुछ बालिकाओं को बैठे या घूमते देखा। और सरलतापूर्वक पूछा—"यहाँ की औरतें तो बहुत ही शौक़ीन मालूम देती हैं राजन ?"

"बहुत।" राजन ने गम्भीरतापूर्वक ही संक्षेप में उत्तर दिया।

"यहाँ के आदमी भी शौकीनी में कुछ कम नहीं हैं।" फिर नीचे जीनों की ओर दृष्टि पसारते हुए शीला ने कहा। "देख रहे हो राजन !

कैसी फूलमालाएँ पहिनकर अधेड़ भी बांके युवक बनकर चलरहे हैं। खूब मस्त लोग हैं यह भी।"

राजन ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपनी ही धुन में मस्त था। कुछ कोठों से संगीत की ध्वनि आरही थी। राजन अब बीच सड़क में आगया और उसके कान उन कोठों से आनेवाली संगीत की ध्वनि में बँधगये। एक दो कोठों से नृत्य का भी ठेका सुनाईदिया परन्तु वह वह नहीं था। कानों ने मना करदिया।

"यहाँ तो ऐसा लगता है राजन! जैसे यह संगीत का ही बाजार हो।" शीला ने सरलतापूर्वक पूछा।

"हाँ शीला! यह संगीत और नृत्य का बाजार है और इसी में मधु भी कहीं पर रहती है।" राजन बोला।

"सच!"

"हाँ, सच!"

"तब तो यही दिल्ली का सबसे सुन्दर बाजार है। यहाँ चलने में भी दिक्कत नहीं होती राजन! वहाँ पीछे, देखा था, कितनी खचाखच भीड़ थी। बदन-से-बदन छिलता था। यहाँ चलने फिरनेवाले लोग देख नहीं रहेहो कैसी मस्ती में झूम-झूमकर चलते हैं! ऐसा मालूम देता है कि इन छैलों को मानो संगीत और नृत्य सुनने तथा देखने के अतिरिक्त और कुछ करना ही नहीं होता।"

राजन फिर कुछ नहीं बोला।

शीला मुँह बनाकर बोली—"मेरी बात का जबाब देते भी जोर पड़रहा है राजन!"

"नहीं शीला! मैं मधु की खोज कररहा हूं। तनिक भी कानों ने धोखा दिया तो अनर्थ होजायगा।" दीन भाव से राजन ने यह शब्द कहकर शीला के मुख पर देखा। शीला मुस्करारही थी।

कुछ और आगे बढ़े तो एक जीने पर प्रकाश-ही-प्रकाश दिखलाई दिया। उसके सामने कई मोटरें भी खड़ीहुई थीं। राजन उस कमरे के

सामने रुका तो ऊपर से तबले के ठेके का नाद उसके कानों में पड़ा। इसी के एक क्षण पश्चात् नृत्य भी प्रारम्भ हुआ। पैरों में बँधेहुए घुंघरुओं का मीठा स्वर वायु-मंडल में थिरकने लगा और वह राजन के कानों में मानो घुसता ही चलागया।

राजन पीछे हटगया। सड़क के दूसरे किनारे पर पहुँचकर पटरी के पत्थर पर बैठगया, बैठगई शीला भी उसी के पास। नृत्य होरहा था और राजन के कानों में मधुर रस घुलरहा था। राजन ने नेत्र बन्द करलिए और स्वर उसके कानों में भरतारहा।

फिर अचानक शीला को दोनों कंधों से पकड़कर बोला, "शीला तुमने सुना, कुछ सुना तुमने, यह किसके पैरों में बँधेहुए घुँघरुओं का रसीला मधुर स्वर था?......"

"मधु का?" शीला ने पूछा।

"हाँ शीला! मधु का ही है। चलो चलते हैं। देखते हैं कि मधु में कितना परिवर्त्तन हुआ है? समय के साथ दुनियाँ बदलती है और मनुष्य भी बदलजाता है, परन्तु कुछ न बदलनेवाले भी व्यक्ति होते हैं संसार में?"

दोनों उठखड़ेहुए और धीरे-धीरे जीने के पास पहुँचे।

शीला ने एक व्यक्ति से पूछा—"क्या मधु का यही मकान है?"

"हाँ।" उसने शीला की ओर घूरकर कहा।

और दोनों ने धीरे-धीरे ऊपर चढ़ना प्रारम्भ करदिया। शीला राजन को सहारा देतीजाती थी और वह किसी प्रकार एक के पश्चात् दूसरी सीढ़ी पकड़ता जाता था। किसी प्रकार राजन ने जीने की अंतिम सीढ़ी पर पैर रखा।

राजन के पैर लड़खड़ारहे थे। शीला ने बहुत प्रयास किया राजन को सँभालने का परन्तु वह उसे न सँभाल सकी और राजन अचेतहोकर मधु के द्वार पर गिरपड़ा।

नृत्य बन्द होगया। कई लोग उधर दौड़े। देखा मधु ने भी आगे

बढ़कर और वह राजन को देखकर विह्वल होउठी। मधु ने वहीं भूमि पर विद्युत-गति से बैठकर राजन का सिर अपनी गोद में सँभाललिया और उसके नेत्रों से अश्रु-धारा बहनिकली।

शीला दौड़कर बिना किसी से पूछेही एक गिलास पानी इधर-उधर देखकर भरलाई और उसने राजन के मुख पर छींटे दिये। राजन को थोड़ी देर में होश आगया।

"मैं ठीक हूँ मधु! तुम रोरहीहो। रोओ नहीं। मैं थकगया था। शायद चक्कर आगया मुझे; बीमार था।"

"मैं रोनहींरही।" नेत्र पोंछतेहुए मधु ने कहा।

आज की सभा यहीं समाप्त होगई। उस्ताद कल्लन, बाईजी, रशीदा और सभी लोगों ने यह दृश्य विचित्र प्रकार से देखा।

राजन ने शीला का हाथ पकड़कर पास बिठलाते हुए कहा—"शीला! देखी तुमने अपनी मधु। यही तो है मधु! अच्छी लगती है न तुम्हें?"

"बहुत अच्छी!" शीला ने मुस्कराकर आँखें मटकातेहुए कहा।

राजन ने फिर शीला का ध्यान उस्ताद कल्लन और बाईजी की ओर आकर्षित करतेहुए कहा—"और यह नहीं देखे तुमने उस्ताद और बाईजी। परन्तु अब घबराना नहीं इनसे। तुम्हारी मधु इनपर विजय प्राप्त कर चुकी है।"

मधु कुछ भी न समझसकी। केवल चमत्कृत होकर देखती भर रही इधर-उधर; परन्तु यह उसने अवश्य देखा कि उस्ताद और बाईजी लजारहे थे राजन के सामने आतेहुए।

—१३—

राजन का स्वास्थ्य अब ठीक था। वह सवेरे उठा तो मधु कमरे से बाहर घूमरही थी। राजन को उठते देख मधु अन्दर आकर सँभालते हुए बोली, "जरा धीरे से उठना राजन !"

"अब मैं बिल्कुल ठीक हूं मधु !" राजन ने तकिये का सहारा लेते हुए कहा। "शीला कहाँ है ?" राजन ने पूछा।

"बड़ी नटखट है तुम्हारी शीला राजन ! रातभर मुझे सोने नहीं दिया उसने।"

"क्यों ?" मुस्कराकर राजन ने पूछा।

"योंही बस, कुछ-की-कुछ कहतीरही।" मधु लजा कर बोली।

"आखिर क्या कहतीरही ? तनिक मैं भी तो सुनूं।" राजन ने पूछा।

"न जाने क्या-क्या कहतीरही। कहती रही कि राजन तुम्हारे विरह में देख नहीं रही हो सूखकर काँटा होगये······क्या यह सच है राजन ?" और इतना कहकर मधु ने पास बैठतेहुए राजन के कन्धे पर अपनी गोल सुडौल साफ सुथरी संगमरमर की-सी गढ़ीहुई कलाई धीरेसे टिकादी।

"तुम ही जानो मधु !" राजन ने धीरे से कहा।

"परन्तु राजन ! क्या तुम्हें निराशा नहीं हुई मेरा यह स्वरूप देखकर ?" मधु ने तनिक पीछे हटते हुए पूछा।

"बिलकुल नहीं।" राजन ने कहा।

"तब क्या तुम पहिले से जानते थे यह राज़ ?"

"हाँ।" राजन बोला।

"और फिर भी तुमने साहसकिया यहाँ आने का। क्या तुम नहीं

जानते राजन ! कि वेश्या का प्रेम, प्रेम नहीं होता ?" मधु ने गम्भीरता-पूर्वक कहा।

"जानता हूँ।" राजन बोला।

"फिर ? फिर किसप्रकार साहस करसके तुम राजन ?" मधु ने उत्सुकता भरे स्वर में कहा।

"इसलिए करसका मधु ! कि मैंने वेश्या को प्रेम नहीं किया, मैंने प्रेम किया है वेश्या से संघर्ष करनेवाली मधु से। मैंने प्रेम किया है उस मधु से जो एक बार वेश्या से डरकर भागगई थी और फिर उसने मेरे कहने से दुबारा आकर वेश्या पर विजय प्राप्त की। उसे वेश्या बनानेवाले को भी उसने········" राजन का गला सूखगया। वह कुछ और कहना चाहतेहुए भी न कहपाया।

मधु दौड़कर पानी का गिलास लेआई। राजन ने एक घूंट भर-कर गिलास एक ओर रखदिया। मधु राजन को सहारा देतेहुए बोली–"अब और बोलें नहीं अधिक। मुझसे भूलहुई जो ऐसा विषय लेबैठी।" लजाते हुए मधु ने कहा।

"नहीं मधु ! मुझे तुम्हारी विजय पर गर्व है। तुमने समाज के उस समुदाय को इन्सानियत की शिक्षा दी है कि जिसे समाज ने अपने आनन्द और उपभोग की सामग्री बनाकर भी घृणा की ही दृष्टि से देखा है। यदि समाज में इन्सानियत होती तो वह अपने इस समुदाय की पूजा करता, घृणा नहीं।"

इसी समय उस्ताद कल्लन और बाईजी को मधु ने सामने से आते हुए देखा। उस्ताद ने आकर राजन को मधु से पहिले सलाम किया। मधु रात्रि की ही भाँति फिर आश्चर्य-चकित रहगई।

"अच्छे तो हो उस्ताद !" राजन ने पूछा।

"दुआ है आपकी। लेकिन आपने यह राज़ हमें वहाँ नहीं बत-लाया बाबू !" उस्ताद ने झुकी ही गर्दन से कहा।

"वहाँ जानकर क्या करते उस्ताद ! हमें जो यहाँ आना था एक

दिन। हम वायदा करचुके थे तुम्हारी मधु से। हम जानते थे कि तुमसे वहाँ फिर भेंट होगी।" राजन ने मुस्कराकर कहा।

"लेकिन बाबू अब बहुत कमजोर होगये हो।" बाईजी बोलीं।

"हाँ, काफी दिन से बीमारी चलरही है। तुम्हारी दिल्ली में आकर शायद अच्छा होजाऊँ।" राजन बोला।

"जरूर होजाओगे बाबू! हमलोग आपकी खिदमत में रात-दिन एक करदेंगे और फिर मधु······"

मधु समझने का प्रयास कररही थी परन्तु उसकी समझ काम नहीं देरही थी। रातभर शीला से इधर-उधर की बातें तो चलती रहीं; परन्तु इस विषय में कोई चर्चा न हुई। राजन की ही बातें करते-करते रात बीतगई और शीला के गालों पर थपकियाँ देते-देते सवेरा होगया। शीला ने भी कई बार मधु को प्रेम की उमंगों में भरकर चूम लिया।

उस्ताद सामने कुर्सी पर बैठगये और इसी समय शीला भी फुदकती हुई वहाँ आगई। राजन ने मुस्कराकर शीला से कहा, "शीला तुम्हें उस्ताद याद कररहे हैं। कहते हैं हमारा २००) तो लौटादो।"

शीला बड़ी ही नटखटता से फुदककर बोली, "अब क्या मिलेंगे वह पाँच सौ रुपये राजन? वह तो खा-पीकर चट्ट भी होचुके।" शीला ने इतना कह तो दिया परन्तु उसका मन एक दम अधीर हो उठा और उसकी आँखों में आँसू भरआये। वह विह्वल होउठी।

मधु ने तुरन्त आगे बढ़कर शीला को प्यार से अपनी कौली में भर लिया और उसे दूसरे कमरे में लेगई। वहाँ पहुँचकर शीला ने रो-रो कर अपनी सारी रामकहानी मधु को सुनाई।

मधु का हृदय यह कहानी सुनकर अपने देवता राजन के चरणों में विलीन होगया और उसके नेत्रों से भी टपाटप आँसू गिरनेलगे। उसने अपनी विजय के सिर पर राजन के आशीर्वाद का हाथ रखा

पाया, अपनी दृढ़ता में राजन के बल की झाँकी देखी और······।

"तुम भी रोरही हो मधु! यदि राजन उस समय न होते तो निश्चय ही यह उस्ताद मुझे वहाँ से उठालाता, अवश्य उठालाता मधु!"

और मधु की आँखों के सामने अपने उस्ताद के साथ आने का दृश्य साकार रूप से चित्रित होउठा। मधु ने एक बार शीला को अपनी छोटी बहिन के रूप में अङ्क में भरलिया और फिर वहीं पर रखे अपने सूटकेस को खोल, उसमें से नोटों की गड्डियाँ निकालकर शीला के सामने पटकती हुई बोली, "यही है वह रुपया शीला! जिसे देकर मुझे खरीदा गया, तुम्हें खरीदने का प्रयास किदागया और न जाने···। मैंने इस पापी को ताले में बन्द कररखा है। ले, तू इसे लेकर इस उस्ताद के सामने पटक दे············नहीं-नहीं शीला नहीं, ······परन्तु नहीं।" और मधु कहतीकहती चुप होगई।

"शीला, तू लेटजा यहीं पर, वहाँ न जा। मैं अभी आती हूँ। यह उस्ताद बड़ा खतरनाक आदमी है। बहुत कुछ सुधर गया है परन्तु इससे मैं फिर भी डरती हूँ। बड़ा जालिम आदमी है। आदमी क्या है, पत्थर का आदमी है। दिल तो मानो इसके पास है ही नहीं। लेकिन अब कुछ-कुछ मैं देखरही हूं कि दर्द-सा उठनेलगा है इसके भी दिल में। शायद कुछ जान आगई है उसमें।"

शीला वहीं पलंग पर लेटगई। शीला स्वयं उस्ताद के सामने नहीं जाना चाहती थी। मधु फिर राजन के पास आगई।

"ठीक है न शीला!" राजन ने पूछा।

"ठीक है।" मधु बोली।

"क्या हो गया उसे?" उस्ताद ने पूछा।

"हुआ कुछ नहीं उस्ताद! तुम्हें देखकर डरती है वह।" मधु मुस्कराकर बोली।

"उसका डरना ठीक है।" उस्ताद ने गम्भीरतापूर्वक कहा। "मुझ

जैसे नर-पिशाच से डरना ही भला है मधु!" और इतना कहकर उस्ताद ने एक लम्बी गहरी साँस लेकर फिर कहा—"बाबू! तुमने मुझे आदमी बनादिया।"

"मैंने नहीं, मधु ने।" राजन बोला।

"दोनों ने मिलकर ही।" बाईजी बोलीं।

"मिलकर नहीं, अलग-अलग।" राजन मुस्कराकर बोला और मधु के मुख-मण्डल पर भी मुस्कान की स्निग्ध रेखाएँ नृत्य करउठीं।

संध्या को रशीदा ने मुजरे के समय से पूर्व मधु को जब शृङ्गार के लिए कहा तो मधु ने मना करदिया। आज मुजरा बन्द रहा।

राजन का स्वास्थ्य धीरे-धीरे ठीक होता जारहा था। छै-सात दिन में वह बिलकुल स्वस्थ होगया। इसके पश्चात् राजन ने एक बार स्वयं घूमकर दिल्ली के वेश्या-समाज का रूप देखा और देखा उन मनचले युवकों, अधेड़ों और वृद्धों को जो वहाँ अपने शरीर की भूख मिटाने के लिए आते थे। यहाँ राजन को मानवता का वह उपहास देखने को मिला कि जिसमें समाज की कड़ी-से-कड़ी रूढ़ियाँ आकर विलुप्त होरही थीं। बनरहा था एक नया समाज, नई व्यवस्था।

राजन मधु से बोला—"मधु, तुमने यहाँ रहकर जो कुछ भी किया है वह आज के मानव को तुम्हारी अमर देन है। समाज उसका मूल्यांकन नहीं करसकता। परन्तु रानी! मेरे हृदय ने तो तुम्हें प्रथम बार से ही देवी मानकर स्वीकार किया है। तुम मेरे हृदय की धड़कन हो मधु! तुम्हारा साहस, तुम्हारा बल, तुम्हारी चातुरी और तुम्हारी कला नारी-जाति ही नहीं वरन् मानव-जाति के लिए सम्मान की वस्तु हैं!"

मधु ने लजाकर राजन का हाथ अपने हाथ में लेते हुए कहा—"राजन! यह सब तुम्हीं ने तो दिया है अपनी मधु को। क्या तुम्हारी शक्ति के बिना भी कभी मेरे लिए यह सम्भव हो सकता था?"

राजन ने आज मधु को प्रेम से अपने में समेटते हुए कहा,—"मधु

तुम कितनी मधुर हो यह शायद तुम स्वयँ भी नहीं जानतीं। परन्तु तुम्हारे मिठास का मुझे पूरी तरह ज्ञान है। मैं चाहता हूं कि तुम समाज के विष पर अपना मधु बिखेरतीहुई एक बार दुनियाँ को दिखलादो कि जिसे तुमने विष बनाकर अपने से बाहर निकालदिया था वही आज तुम्हारे घावों पर मरहम लगासकती है, तुम्हारी जलन पर चंदन का लेप करसकती है, तुम्हारी कड़वाहट को मिठास में बदलसकती है।

"तुम्हें एक नया समाज बनाना है मधु! याद होगा एक दिन पहिले भी मैंने तुमसे कहा था और वह दिन आज आचुका है।"

मधु ने भोलेपन से पूछा—"वह कैसा समाज होगा राजन?"

राजन—"वह मीठा समाज होगा मधु! और तुम होगी उस मिठास को प्रदान करने वाली मधु। उस समाज में न कोई बड़ा होगा और न छोटा। कोई किसी को तुच्छ समझने का अधिकारी नहीं होगा।"

मधु—"यह ठीक है जो आपने कहा। परन्तु पैसे की व्यवस्था क्या उस समाज में नहीं होगी?"

राजन—"होगी क्यों नहीं मधु?"

मधु—"तब तो फिर मधु के खरीदार खड़े हो जायँगे और शीला पर ५००) अग्रिम देने की प्रथा चलपड़ेगी।"

राजन हँसदिया और मधु लजागई। राजन ने हलके से मधु की ठोड़ी ऊपर उठाते हुए प्यार से नेत्रों में नेत्र डालदिये और फिर धीरे से कहा—"उस समाज में मनुष्य पैसे से ऊपर होगा मधु! उसमें पैसा मनुष्य को नहीं खरीदसकेगा।"

मधु—"क्या ऐसा भी कभी सम्भव है राजन?"

राजन—"प्रयत्न हम अवश्य करेंगे और सफलता का हमें विश्वास है। अटल विश्वास को लेकर जो कार्य कियाजाता है मधु! उसमें सफलता अवश्य मिलती है।"

राजन और मधु प्रेम-बन्धन में बँधकर एकहोगये। राजन ने मधु से

कहा—"हमें इस कार्य के लिए अब दिल्ली छोड़देनी होगी और नये समाज का प्रचार करतेहुए पैदल देश का भ्रमण करनाहोगा। क्या करसकोगी मधु ?"

मधु—"आपके साथ क्या नहीं कर सकूंगी राजन !" और इतना कहकर मधु के नेत्र भरआये। "तुम्हें पालिया राजन ! तो मैंने सर्वस्व पालिया। तुमने यहाँ आकर मेरे हृदय की जलतीहुई ज्वाला को शान्त करदिया। मुझे नव-जीवन प्रदान किया है तुमने और वह वस्तु दी है कि जो भगवान् भी आजतक न देपाया था।"

संध्या को जब यह चर्चा उस्ताद कल्लन के सामने आई तो वह आनन्दविभोर होउठे और उन्होंने राजन की बात का समर्थन किया। बाईजी और रशीदा भी पीछे न रहसकीं।

शीला इसी समय मधु और राजन के बीच आकर बोली—"आप के नये समाज का झंडा लेकर सामने चलनेवाली दासी भी तय्यार है राजन !"

मधु ने मुस्कराकर शीला को प्यार से अपने पास बिठलालिया। दूसरे दिन नये समाज के आदर्श को अपने जीवन में भरकर यह छै आदमियों की टोली देश का भ्रमण करने के लिए उद्यत हुई। दिल्ली के वेश्या-समाज ने इनके मस्तक पर रोली का टीका लगाते हुए फूल-मालाएँ पहिनाईं और समाज के बड़े-बड़े ठेकेदारों ने अन्धकारपूर्ण जीनों के अन्दर छुपकर ललचाई दृष्टि से मधु का यह विदा-समारोह देखा।

चलते समय आज राजन ने, मंदिर के पुजारी नें, मधु के कोठे पर मुक्त कंठ से गाया और मधु ने अपना अन्तिम नृत्य दिल्ली की जनता के सम्मुख पेश किया।

रूप की प्रतिमा मधुर रस
ढालदो दिल की जलन पर,
बिछादो मुस्कान मधु तुम
नियति के तन, मन, गगन पर।

ले अटल विश्वास दुनियाँ
स्वप्न को साकार करदो,
प्रेम की अँगड़ाइयों में
ज़िन्दगी का सार भरदो।

मुक्ति दो जग-बन्धनों को
प्रगति के पथ पर चलो तुम,
मुस्कराती छवि सजा दो
नियति के व्यापक रुदन पर।
रूप की प्रतिमा मधुर रस
ढालदो दिल की जलन पर।

देखता जग से छुपाकर
हर बशर रङ्गीन सपने,
स्वप्न बन तुम पर सुमुखि वह
खोलता है राज़ अपने।

राज़ की निधियाँ लिए
कितने हृदय की सान्त्वना-सी,
देवि ! मंगल-गान गाकर
छोड़दो बहती पवन पर।
रूप की प्रतिमा मधुर रस
ढालदो दिल की जलन पर।

राज अपनी ज़िन्दगी का,
स्वप्न अपनी ज़िन्दगी का,
मुक्ति की उपमा बना दो,
प्यार अपनी ज़िन्दगी का।

तोड़दो बन्धन नियति के
यदि रुकावट ज़िन्दगी में
बन रहे हों; तोड़ दो तुम।
बाँधलो अधिकार मन पर।
रूप की प्रतिमा मधुर रस
ढालदो दिल की जलन पर।

प्यार तुम साकार बनकर
रोकदो उपहास अपना,
देखलें सच आज होता
रूढ़ियाँ साकार सपना।

शर्म से खुद टूट जाएँ
बेड़ियाँ अपनी पुरातन;
उठा काला पर्त रूपसि!
डालदो रूढ़ी-गगन पर।
रूप की प्रतिमा मधुर रस
ढालदो दिल की जलन पर।